धर्मशुद्धि या धर्मध्वंस



मीमांसकेन व्याधेन हतो धर्ममयः खगः।।
मेषायते वृकः क्रूरः शास्त्रवाक्यछलेन वै।।

प्रो. सदाकान्त त्रिपाठी

2.5

धर्मशुद्धि या धर्मध्वंस

(डॉ. कमलाकान्त त्रिपाठी विरचित 'धर्मशुद्धि' ग्रन्थ की समीक्षा)

समीक्षक-संपादक

प्रो. सदाकान्त त्रिपाठी

धर्मशास्त्राचार्य, पुराणाचार्य

पीएच.डी.

प्रकाशक

श्री सनातन धर्म रक्षापीठ

तीर्थराज प्रयाग/करोलबाग दिल्ली

धर्मशुद्धि या धर्मध्वंस

लेखक - प्रो. सदाकान्त त्रिपाठी

प्रथम संस्कार : अक्टूबर २००५

प्रतियाँ - ११००

मूल्य - १२५/-

सहयोगी संस्थायें-

सनातन धर्म सभा, पुरानी दिल्ली
सनातन संदेश, हरिद्वार
हिन्दू संस्कृति शोधपीठ, कलकत्ता

समर्पित है यह कृति
'धर्मदृष्टि' से आलोकित
'धर्मबुद्धि' से संचालित
'धर्मतत्त्व' से परिपुष्ट
ऋषि-मुनि-महात्मा-सन्त जनों को
जिन्होंने समस्त हिन्दू समाज को
'धर्मपथ' पर एक साथ चलने को
प्रवृत्त किया, अवसर दिया

विषय सूची

भूमिका

"धर्मशुद्धि" शब्द सुनने में कर्णप्रिय लगता है; पर इसका मीमांसकों द्वारा प्रतिपादित अर्थ इतना भयावह है कि हिन्दू समाज का रोम-रोम सिहर उठता है। इस्लाम में जो अर्थ 'जेहाद' का है, खीस्तमत में जो अर्थ 'क्रूसेड' का है वही अर्थ मीमांसकों के अनुसार 'धर्मशुद्धि' का है। रत्न जटित स्वर्णमंजूषा में बंद तक्षक की तरह अन्तर्बाह्य शुद्धि के आवरण में लिपटा है अपशब्दब्रह्म से मंडित मीमांसा का शुद्धि धर्म। धर्म की अनेक परिभाषायें शास्त्रज्ञों ने दी हैं; पर चोदना व्यापार ही धर्म होगा, पशुयाग के अतिरिक्त कोई धर्म नहीं होता यह मान्यता है सकाम फलभोगी मीमांसकों की। याग के नाम पर विकराल अश्लीलता, शुद्धि के नाम पर गर्दभ और अश्व का लिङ्गपूजन स्वर्ग तक सीमित मीमांसक ही कर सकते हैं। ईश्वर का खण्डन कर बहुदेवतावाद की स्थापना और कामी इन्द्र की पूजा की प्रक्रिया को चलाना उन्हीं का काम है। इन्हीं धर्मजीवियों यानी धंधा रूपी धर्म से जीवन चलाने वाले धर्म धंधकों से नाराज ऋषि वसिष्ठ ने कभी कहा था- 'शिश्नदेवा ऋतं मा गु:' अर्थात् शिश्नपूजक लोग ऋत धर्म को कभी प्राप्त न करें। पूरा का पूरा वैष्णव लेखन (भागवतमहापुराणादि) तथा अद्वैतवेदान्त स्वर्ग के महिमा-मण्डन के विरुद्ध खड़ा है। यहाँ स्वर्ग से बड़ा है भक्त का भगवान् और स्व का 'आत्मज्ञान'। मीमांसा और स्मृतियों ने व्यक्ति को जकड़ कर चेतना शून्य बना दिया। कलंज (प्याज) और लशुन (लहसुन) से आगे इनकी बुद्धि ही नहीं दौड़ सकी। मेवों और दाखों की चर्चा तक नहीं हुई। स्मृतियों में तो फिर भी निरंतर लेखन क्रम जारी रहा पर मीमांसा का तपस्वी स्वरूप मर गया और धर्मशुद्धि का जहर बचा रहा। गीता का कर्म मीमांसा का कर्म नहीं है। गीता स्वर्ग को ठेंगे पर रखती है। इन्द्र पूजा का प्रथम बहिष्कार श्रीकृष्ण द्वारा आरम्भ होता है। यह देश और हिन्दू समाज जप, यज्ञ, दान, अतिथि सत्कार, पूजा, तीर्थाटन और अन्यान्य धार्मिक प्रतीकों को लेकर चलता है; पर किसी व्यक्ति विशेष और

पद्धति विशेष को न अपनाने पर उसे गालियाँ दी जायें यह न तो शास्त्रज्ञता है न धार्मिकता। कमलाकान्त काशी की उस गाली-गलौज वाली परंपरा के पायदान पर खड़े हैं जिससे ऊपर चढ़कर स्व. पं. देवस्वरूप मिश्र जी और उनके नैयायिक एवं साहित्यिक मित्र स्थापित मिलते हैं। इनमें से अनेक आज जीवित भी हैं। ये लोग संस्कृत में वार्ता करते करते 'अहं तव भगिन्या:........' जैसी गाली पर उतर आते हैं। तब वे अंपशब्द ब्रह्म से अपना और प्रतिपक्षी का अभिषेक करते-कराते हैं। क्यों इतनी गंदगी है संस्कृत के कुछ ख़ास पण्डितों में? वे सहिष्णु क्यों नहीं है? यदि शास्त्रज्ञ हैं तो समाज को उसका प्रयोजन क्यों नहीं बतलाते? जो सद्धर्मी, मौनव्रती, समाजोत्कर्ष के पुरोधा हैं वे पूजे भी जा रहे हैं। आज इन्हीं गाली गलौज वाली पद्धति के कारण शंकराचार्यों की गरिमा गिर गयी है। वाणी के प्रकर्ष और समाज के सद्भाव कों पकड़ कर, अपनी तपस्विता से पूज्य स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी और पूज्य श्री आशारामबापू जी, संत श्री मोरारी बापू, संत श्री रमेश भाई ओझा, संत श्री रविशंकर जी अगर अग्रपूजित बन गये तो कमलाकान्त को दर्द क्यों हो रहा है? वे शिशुपाल क्यों बन रहे हैं?

सिनेमा क़लाकार अभिनेता श्री आशुतोष राणा काशी में आते हैं और 'ताज' होटल में ठहरते हैं। यह पता लगते ही कमलाकान्त और उनके सर्वनाशक मित्र हरिप्रसाद द्विवेदी होटल के कमरे में धमक पड़ते हैं। कमलाकान्त कहते हैं- 'मैं विभागाध्यक्ष हूँ। धर्म पर धर्मशुद्धि नामक पुस्तक लिख रहा हूँ। मुझे पचास हजार रुपये प्रकाशनार्थ चाहिए।' जब श्री आशुतोष राणा ने उनको पहचानने से इंकार कर दिया तो उन्होंने अंतिम चाल चली- 'मैं डॉ. चन्द्रमौली उपाध्याय का भाई हूँ।' ध्येय है डॉ. उपाध्याय प्रसिद्ध ज्योतिषी हैं और साथ ही विश्वनाथ मंदिर के ट्रस्टी भी। उनका अनेक प्रसिद्ध मुम्बईया अभिनेता-अभिनेत्रियों से परिचय है। डॉ. उपाध्याय ने राणा को जानकारी दी कि मैं इस आदमी को जानता तक नहीं। मात्र इसी बात को लेकर गुस्साये कमलाकान्त ने विश्वनाथ मंदिर और अभिनेता-

अभिनेत्रियों के विरूद्ध जहर उगलने का काम किया है ऐसा नहीं है। वे विश्वनाथ मंदिर के माध्यम से निरंतर दक्षिणा और सत्कार भी चाहते हैं।

सेठों से धन मांगना ब्राह्मणों का धर्म है। भिक्षा मांगना विप्र धर्म है; पर सेठ धन न दे तो उसे शाप देकर धमकाना और सेठों को धर्मशुद्धि में गाली देना, उनकी पत्नियों को नौकरों से सम्बन्धित लिखना धर्मशुद्धि नहीं धर्मध्वंस है। दण्डी आश्रम में जाकर ट्रस्टी बनने हेतु वहाँ के व्यवस्थापक को प्रलोभन देना आदि कमलाकान्त का प्रतिदिवसीय काम है। प्रात: काल उठते ही हरिप्रसाद इनके यहाँ आकर धमक जाते हैं; जैसे प्रात: काल का अखबार आ टपकता है और योजना बनने लगती है- आज किस मण्डलेश्वर को ठगा जाए और किस सेठ को पटाया जाए? पर काशी गुरुओं की नगरी है। यही हाल इलाहाबाद के भी कुछ पंडितों का है। दिल्ली में तो ठगी का रूप वैज्ञानिक और वैश्विक है। कमलाकान्त जी! उपदेश से बड़ा होता है आचरण। वही आपके पास नहीं है-

''पर उपदेश कुसल बहुतेरे
जे आचरहिं ते नर न घनेरे''

पुस्तकों को लिखकर धन कमाने की चाहत पुरानी है पर प्रसिद्धि प्राप्ति के लिए विवादित बातों को लिखने का जो क्रम चला है वह अशुभ है। गाली गलौज, अपमानजनक टिप्पणी और व्यक्तिगत आक्षेप युक्त लेखन इन दिनों रातों रात चर्चा में आने के लिए माध्यम बन गये हैं। वैसे यह बीमारी हिन्दी वालों में ज्यादा थी पर देखा देखी संस्कृत लेखन में भी इसका प्रवेश हो चुका है। प्राचीन समय में अप्पय्य दीक्षित बनाम पंडितराज जगन्नाथ के बीच जो लेखन युद्ध चला वह व्यक्तिगत आक्षेप और ईर्ष्या का साहित्यिक एवं बौद्धिक प्रतिफलन था। यह लड़ाई भी मीमांसा और साहित्य के बीच थी। मीमांसक अप्पय्य दीक्षित पंडितराज को बहिष्कृत और तिरस्कृत कराना चाहते थे और पंडितराज उन्हें मीमांसा तक सीमित, अभिनव विचार प्रवाह के स्ताम्भक के रूप में देखते थे।

पंडितराज जगन्नाथ को प्रतिष्ठापरक तत्कालीन क्षति हुई होगी पर इतिहास प्रवाह में वे अप्पय्य दीक्षित पर भारी हैं तथा साहित्य की स्वतंत्र प्रवृत्ति के प्रयोक्ता इतिहास पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित हैं। निःसन्देह यह प्रतिष्ठा अप्पय्य दीक्षित को नहीं प्राप्त है। अस्तु। इधर गाली गलौज से पूर्ण पुस्तकों की सूची में तेजी से वृद्धि हुई है। उसी क्रम में संस्कृत जगत् से एक नाम जुटा है- धर्मशुद्धि और उसके लेखक कमलाकान्त का। महाभाष्य का वह उद्घोष आज किनारे कर दियां गया है जिसमें- 'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे मर्त्ये च कामधुग् भवति' का सिद्धान्त प्रतिपादित था। अब तो स्वर्ग के ठेकेदार मीमांसक भी मर्त्यलोक में ही सब कुछ पा लेने के लिए अपशब्दब्रह्मकोष से पूर्ण धर्मशुद्धि कर-करा रहे हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि यह सब काशी में हो रहा है। जिनमें सरस्वती की प्रगाढ़ता है वे शान्त हैं और कर्मनाशा तथा वैतरणी उफान पर है। 'अस्सी का काशी' और 'पक्का महाल' में गालियों को साहित्यिक आवरण दिया गया है; जबकि 'धर्मशुद्धि' में व्यक्ति का नामोल्लेख पूर्वक गालियाँ दी गई हैं। ग्रन्थ पढ़ने के बाद प्रशान्ति और आत्मतोष आना चाहिए। मन जुगुप्सा और विराग से भर जाय तो लेखन और लेखक के प्रति नैराश्य और परित्याग की भावना उत्पन्न होती है। ग्रन्थ पढ़ना सरस्वती और गंगा में अवगाहन करना होता है। अतः प्रभु से प्रार्थना है कि वे ज्ञान गंगा को पवित्रतम बनाये रखने की प्रेरणा सभी को दें-

"नित्य ज्ञानं वितरय भगवन् भूयसे मङ्गलाय"

विजयादशमी
संदाकान्त त्रिपाठी

१२.१०.२००५

दिल्ली

इस ग्रन्थ की आवश्यकता क्यों?

डॉ. कमलाकान्त त्रिपाठी; सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के 'पूर्व मीमांसा' विभाग में प्रवक्ता पद पर कार्यरत हैं। इस विभाग में ये एकमात्र अध्यापक हैं। प्रान्तीय विश्वविद्यालयों में प्रवक्ता (लेक्चरर) भी विभागाध्यक्ष पद संभालने लगता है; जबकि केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में विभागाध्यक्ष होने के लिए 'रीडर' पद धारक होना आवश्यक होता है। यदि विभाग में एकमात्र प्रवक्ता हो तो संकाय प्रमुख उस विभाग का अध्यक्ष होता है। प्रान्तीय विश्वविद्यालयों की स्थिति का लाभ उठाकर कमलाकान्त त्रिपाठी अपने को मीमांसा विभागाध्यक्ष लिखते हैं। विगत कई वर्षों से पूर्व मीमांसा विभाग में एक भी छात्र अध्ययनरत नहीं है। २३ अगस्त २००५ के दैनिक जागरण एवं २५ अगस्त २००५ के हिन्दुस्तान ने लिखा कि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कई एक विभागों में छात्र ही नहीं हैं। इन विभागों में पूर्वमीमांसा विभाग सर्वोपरि था। अधिक जानकारी इंटरनेट के द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

यदि छात्रों को पढ़ाये बिना १६ या १८ हजार रूपये मासिक वेतन मिलने लगे और विभाग में केवल जाकर संकायप्रमुख से मिलकर घर आ जाना हो तो ऐसा व्यक्ति खुराफात करेगा ही। फलतः कमलाकान्त त्रिपाठी ने चर्चित होने के लिए तथा धन कमाने के लिए कुछ कट्टरपंथी ग्रन्थों का लेखन शुरु किया। इस व्यक्ति का अध्ययन क्षेत्र अत्यन्त संकुचित है और मीमांसा के ग्रन्थों के अतिरिक्त इसकी ज्ञान राशि शून्य होने के कारण इसने गाली-गलौज से परिपूर्ण 'धर्मशुद्धि' नामक ग्रन्थ को लिख डाला। इस पुस्तक को सामान्य व्यक्ति पढ़ भी नहीं सकता; क्योंकि इस पूरे ग्रन्थ में धर्म कहीं है ही नहीं। शुद्धि के नाम पर मनुस्मृति के अस्वीकृत सिद्धान्तों, गौतम-आपस्तम्ब के अति-प्राचीन जड़वादों तथा कुमारिलभट्ट के आत्म-हत्यारे विचारों का पल्लवन मात्र है। वर्णव्यवस्था के नाम पर ब्राह्मणेतर सभी जातियों को शूद्र कह कर इसमें गालियाँ दी गई हैं और

जगह-जगह पर मीमांसकों की आदत के अनुसार स्वर्ग का भय दिखलाया गया है। शूद्र वर्ण की खिल्ली उंड़ाई गयी है और पिछड़े वर्ग को भी शूद्र कह कर उन्हें तिरस्कृत किया गया है। इस प्रकार १ से लेकर ७० पृष्ठों तक ब्राह्मण जाति में जन्म लेने वालों का गुणगान और अन्य जातियों का अपमान किया गया है। ७१ पृष्ठ से लेकर १५० पृष्ठ तक मीमांसा के उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है जो आज जीवित नहीं हैं। इसी के बीच में ईश्वर की सत्ता का खण्डन कर यज्ञ परक कर्म को ही ईश्वर स्थानीय मान कर मण्डित किया गया है। १५१ पृष्ठ से लेकर २०५ पृष्ठ के बीच श्रीकृष्ण-अर्जुन-युधिष्ठिर-भीष्म आदि को अधार्मिक कहा गया है। मथुरा की ब्राह्मणियों को शराबी कह कर गाली दी गयी है। इसी बीच में दाक्षिणात्यों की मातुल कन्या विवाह परम्परा को गालियाँ दी गई हैं। २०६ पृष्ठ से लेकर २५० तक यम स्मृति, हारीत स्मृति, विश्व हिन्दू परिषद्, स्वामी-नारायण सम्प्रदाय को गालियाँ दी गई हैं। प्याज खाने और विदेश जाने को महापाप कहा गया है; जबकि महापाप में इनकी गणना ही नहीं की गयी है। २५१ पृष्ठ से लेकर २७० पृष्ठ के बीच स्वामी अड़गड़ानन्द जी महाराज और श्री आशाराम बापू जी को शूद्र एवं निम्न कहा गया है। प्रो. विद्यानिवास मिश्र, प्रो. शिव जी उपाध्याय, डॉ. कामेश्वर उपाध्याय, प्रो. राजेन्द्र मिश्र को अपशब्द कहे गये हैं। जैन, बौध, इस्लाम, ईसाई मतों को तिरस्कृत किया गया है।

जिन विषयों पर धर्म को लेकर गहन चर्चा होनी चाहिए उन व्यापक विषयों का इसमें स्पर्श ही नहीं किया गया है जैसे- मांस भक्षण निषेध, गोमांस भक्षण निषेध, सती प्रथा निषेध, दहेज प्रथा निषेध, हिन्दु धर्म संवर्धन, तीर्थ प्रदेशों के संरक्षण, भारत भूमि की रक्षा, हिन्दु धर्म की रक्षा के उपाय, धर्मान्तरण रोकने तथा वृषलत्व (शूद्रत्व) निवारण के उपाय आदि आदि।

जिस देश का ब्राह्मण उदरम्भरी हो जाता है, स्वकर्म छोड़कर दूसरों की आलोचना मात्र तक संतुष्ट हो जाता है, धर्म की गलत व्याख्या करने लगता है,

धर्म-भय को दिखाकर धन ऐंठने लगता है उस देश के अन्य जन वृषलत्व (शूद्रत्व) को प्राप्त कर लें तो इसमें अन्य का दोष नहीं होता। दूसरों को गालियाँ देकर श्रेष्ठ नहीं बना जा सकता। विराट् हिन्दू समाज के विकासशील गवाक्षों को अहंकारी मीमांसक और धर्मशास्त्री बन्द नहीं कर सकते-

शनकैश्च क्रियालोपात् ब्राह्मणानामदर्शनात्।
वृषलत्वं गता लोके इमे क्षत्रियजातयः।। स्मृतिः।।

युद्धरत क्षत्रिय जातियाँ राष्ट्ररक्षा में निरत होने के कारण संस्कार, पूजन, सन्ध्यावंदन, आहारशुद्धि आदि नहीं रख पातीं। इस तथ्य को प्राचीन स्मृतिकार भी अच्छी तरह से जानते थे। उन्हें युद्धोपरान्त शुद्ध कर संस्कृत और धार्मिक बनाने का काम श्रेष्ठ विप्रों का था। मुद्राराक्षस नाटक में भी इसका उल्लेख है। वृषलत्व निवारण वार्षिक कर्म था। जब से ब्राह्मणों ने वानप्रस्थ का त्याग कर, आत्मकेन्द्रित होकर नगरों और विद्या केन्द्रों तक सीमित रहना शुरु कर दिया विराट् हिन्दू समाज में संस्कार और धर्म का लोप होने लगा। स्वतन्त्र भारत में शंकराचार्यों और ब्राह्मणों का काम प्रवचन कर्त्ता संतों और व्यासों ने सम्भाल लिया। अब आज इनसे मीमांसक और महन्त चिढ़ें तो यह दोष किसका है?

कमलाकान्त त्रिपाठी के मीमांसा गुरु श्री पट्टाभिराम शास्त्री थे। इनके कुल में मातुलकन्या विवाह की परंपरा प्रचलित है; पर इन्हें गालियाँ नहीं दी गयी हैं। ग्रन्थान्त में इनका स्मरण किया गया है। प्रो. पट्टाभिराम शास्त्री द्रविड़ हैं, पर उन्हें व्यक्तिगत रूप से शूद्र नहीं कहा गया; क्योंकि उनकी कृपा से ही कमलाकान्त का निर्माण हुआ है। अन्य सारे द्रविड़ शूद्र हैं (पृ. ४९)। शास्त्री जी ने 'गो' को 'द्रव्य' मानकर जो तर्क दिया था उससे गो के 'देवता' का निवारण हो गया था और तत्कालीन प्रधानमंत्री को न्यायालय से विजय मिली थी। विद्वत् समाज ने इस तर्क को स्वीकार नहीं किया था। इस संदर्भ में कमलाकान्त मौन क्यों हैं?

स्वामी अखण्डानन्द जी को प्रणाम करने के पीछे का स्वार्थ स्पष्ट है। कमलाकान्त को स्वामी जी से स्वर्ण की चवन्नी और चाँदी के रूप्यकम् प्राप्त होते थे। आज स्वामी जी के वंशधर प्रेस चलवाने से लेकर सब कुछ कर रहे हैं पर वे सभी के सभी कमलाकान्त के लिए प्रणम्य क्यों हैं? क्योंकि धन प्राप्ति की आशा शेष बची हुयी है। यदि स्वामी जी के वंशधर आज समृद्ध हैं तो यह उनका पुरुषार्थ और तप है। इसमें किसी को आपत्ति नहीं है; पर कमलाकान्त की मानसिक स्थिति को उजागर करना आवश्यक है।

कमलाकान्त मीमांसा पर न तो श्रेष्ठ ग्रन्थ लिख सकते हैं और न ही मीमांसोक्त या वेदोक्त किसी याग का संचालन कर सकते हैं। धर्मशुद्धि में ही याग विषय का वर्णन करते समय कमलाकान्त की अल्पज्ञता सामने आ जाती है। 'विषुवान्' दिवस कब होता था? आज कब होता है? कितने विषुवान् दिवस होते हैं? इसका ज्ञान इन्हें नहीं है। पृष्ठ २३० एवं २३१। 'महावीर' पात्र निर्माण की सूक्ष्म प्रक्रिया का उल्लेख क्यों नहीं किया गया। पृ. २३५। इनके सोमयाग निरूपण को पढ़कर कोई भी ज्ञाता मीमांसक इनकी अल्पज्ञता को समझ सकता है। ग्रह भक्षण विधि, पात्र प्रक्षालनविधि, प्रक्षाल्यपदार्थ क्या है? बारह ऋतुग्रह क्या है? अंशु-उपांशु-अन्तर्याम ग्रह को स्पष्ट नहीं किया गया है। ऋत्विक गमन समन्त्रक हो या मौन यह उक्त नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि कमलाकान्त को मीमांसा का भी अन्तस्तलीय ज्ञान नहीं है। इन्हीं विषयों और कमलाकान्त की पृष्ठभूमि को उजागर करने के लिए इस समीक्षात्मक ग्रन्थ का संपादन किया गया है। यदि यह समीक्षा नहीं लिखी जाती तो राष्ट्र का महान् अपकार होता और असत्य की प्रतिष्ठा होती। प्राचीन विश्वनाथ मंदिर और शोधछात्राओं के संदर्भ में जो सौ प्रतिशत मिथ्या प्रचार और प्रलाप किया गया है उसकी पुष्टि होती। यह धर्मशुद्धि की शुद्धि है। वस्तुतः धर्मशुद्धि धर्मध्वंस है।



धर्मध्वंस

'धर्मशुद्धि' ग्रन्थ में अपरिपक्व मीमांसक कमलाकान्त द्वारा स्थापित धर्मसिद्धान्त-

१. प्राचीन विश्वनाथ मंदिर कदाचार और सुरत (Sex) क्रीड़ा में निरत अभिनेत्रियों का अड्डा है। पृ. २० भूमिका

२. विदेश जाने वाला पतित और चाण्डाल है। भूमिका २२

३. उत्तर भारत में आचार पद्धति नहीं रह गयी है। पृ. १५

४. स्वतन्त्र विचार उन्मत्तों के प्रलाप की तरह हैं। पृ. २२

५. 'ईश्वर' कुछ नहीं होता है। कर्म सब कुछ होता है। ईश्वर की सत्ता नहीं है। 'ईश्वर' को मानने वाले प्रमत्त हैं। पृ. २२ से पृ. ३२ तक।

६. द्विज पुरुष और उससे परतर (एक कम) आदि वर्ण की कन्या से उत्पन्न संतति शूद्र होती है। पृ. ३६

७. द्विजों में जातियाँ नहीं होतीं। केवल शूद्रों में ही अनेक जातियाँ होती हैं। पृ. ३७

८. अनार्य म्लेच्छ हैं। पृ. ३७

९. ब्राह्मणत्वादि वर्णों का विभाग शास्त्र का विषय नहीं है। पृ. ४२

१०. श्री कृष्ण शूद्र थे। अहीर और यादव शूद्र हैं। पृ. ४५

११. कूर्मी, काछी, अहीर, कायस्थ, बढ़यी लोहार आदि शूद्र हैं। इनकी दृष्टि भोजन पर न पड़े। पृ. ४६

१२. पटेल शूद्र ही हैं। पृ. ४५

१३. अम्बष्ठ (कायस्थ) शूद्र हैं। पृ. ४५

१४. कूर्मी कछुवा एवं चूहे भून कर खाते हैं। पृ. ४७

१५. गुप्त उपाधिधारक वणिक् शूद्र के अन्तर्गत हैं। पृ. ४७

१६. शूद्रों का संस्कार, अध्यापन, यजन करने वाला विप्र पतित हो जाता है। पृ. ४७

१७. शेख मुसलमान ब्राह्मण ही शूद्रत्व को प्राप्त हुए। पृ. ४९

१८. द्रविड़ शूद्र हैं। पृ. ४९

१९. व्रात्य क्षत्रिय शूद्र हैं। पृ. ४९

२०. वैश्य से क्षत्रिय में, क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न संतानें पतितवृत्ति नहीं हैं। केवल शूद्र के सम्बन्ध से पतितवृत्ति होती है। पृ. ५०।

२१. ब्रह्मचर्य भंग करने वाले ब्रह्मचारी को गदहे पर चढ़ाकर चौराहे पर यज्ञ करना चाहिए पृ. ६०।

२२. शूद्र का कर्म है द्विजजाति सेवा पृष्ठ ६०।

२३. ब्राह्मण से कोई वैर न करे वह मगरमच्छ है पृ. ६१

२४. धर्म की एकमात्र शुद्ध परिभाषा- ''चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः'' है। पृ. ७१-७३

२५. कणाद का धर्मलक्षण अशुद्ध है- 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'; क्योंकि कुमारिलभट्ट मीमांसक ने इसे नहीं माना है। पृ. ७१

२६. सर्वधर्मसमभाव प्रलाप है; निकृष्ट है। पृष्ठ ७७

२७. चोदना जन्य ज्ञान ही ज्ञान होता है। पृ. ८१

२८. जैसे अधिकारी कमीशन स्वीकार करता है वैसे याग में देवता अपने अपने भागों को स्वीकार करते हैं। पृष्ठ ८१

२९. भारतीय अदालत सदोष को निर्दोष सिद्ध करती है। इसीलिए नेता और सम्भ्रान्त जन न्यायालय का सम्मान करते हैं। पृष्ठ ८५

३०. न्यायप्रक्रिया में प्रत्यक्ष को प्रमाण माना जाता है यह दूषण है। लौकिक प्रमाणों की गति न्यायप्रक्रिया में प्रजातन्त्र की तरह सम्भव नहीं तो यह भूषण है, दूषण नहीं। पृ. १०६

३१. प्याज खाने वाला पतित, नीच, चाण्डाल है, क्योंकि मीमांसा में कहा गया है- 'न कलञ्जं भक्षयेत्'। पृष्ठ ९५

३२. केवल मीमांसक की प्रीति ही धर्म है। (अन्य शास्त्र एवं जन की प्रीति पाप है)। पृष्ठ १०१

३३. धर्म-अधर्म के मूल में 'चोदना' है। पृष्ठ १०४

३४. किसी पीड़ित को यदि मुक्ति दिलानी हो तो उसके लिए हिंसा ही पुण्य होगा जिसे कुछ लोग नहीं मानते। पृष्ठ १०७

३५. शास्त्र, चोदना, उपदेश ये सभी पर्याय शब्द हैं। पृ. १०८

३६. अहिंसा 'धर्म कञ्चुक' (छद्म आवरण) है। पृ. १३७

३७. क्षत्रिय और भुँइहार आचार्य बन कर दुराचार कर रहे हैं। पृष्ठ १७३

३८. विहिप शूद्रों को आचार्य बना रहा है इस मुद्दे पर उसकी उपेक्षा होनी चाहिए। पृष्ठ १७३

३९. जात-पाँत का भेद मिथ्या है। ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। साधक के लिए पूरी पृथ्वी ही तीर्थ है यह सब प्रचार है। पृष्ठ १७६

४०. वेद का अनर्थ कलि-अवतार दयानन्द और श्रीराम शर्मा जैसे पातकियों द्वारा चला और उनके अनुयायियों द्वारा चल भी रहा है। पृष्ठ १८१

४१. पुरुष अनेक पत्नी रख सकता है स्त्री एक पति रख सकती है- वह्वीर्जाया विन्दते। पृष्ठ १८८

४२. स्वाध्याय और अध्ययन स्त्री और शूद्र के लिए अधर्म है। पृष्ठ २०५

५६. किं बहुना? आज जो भी राजसत्ता में चल रहा है वह हिंसा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। पृष्ठ २६५

५७. नानक मत के अनुगमन से विपत्ति आती है। पृ. २७०

५८. जो पुत्र कहने पर भी पिता का काम नहीं करते वे मल के समान हैं। पृ. २७२

धर्मशुद्धि ग्रन्थ २७४ पृष्ठों के कलेवर वाला है। इस ग्रन्थ में से यदि ईश्वर खण्डन, मीमांसायाग प्रतिपादन, श्रेष्ठ पन्थों, सम्प्रदायों, साधु-सन्तों एवं विद्वानों को दी गयी गालियों को निकाल दिया जाय तो यह सम्पूर्ण ग्रन्थ ४० पृष्ठों से अधिक का नहीं होगा। ईश्वर खण्डन से धर्मशुद्धि नहीं होगी। मीमांसायाग का वर्णन धर्मशुद्धि का विषय नहीं है। गाली-गलौज से सिद्धान्त की स्थापना नहीं होती। इस ग्रन्थ में वैचारिक प्रवाह का अभाव और विषयगत बिखराव मात्र है। जहाँ-जहाँ दो विषयों में तुलनात्मक प्रस्तुति की गयी है वहीं अचानक़ निचले पायदान पर आकर साम्प्रतिक उदाहरणों और नामों को प्रस्तुत किया गया है। फलतः तुलनात्मक विचारक्रम टूट कर बिखर गया है। यहीं पर गाली-गलौज प्रस्तुत होने से जुगुप्सा होती है। इस ग्रन्थ के विषय को सामान्य व्यक्ति पढ़ेगा नहीं और विशिष्ट व्यक्ति को मीमांसा के पाठ्यक्रम और ईश्वर खण्डन से कुछ लेना देना नहीं है। यह ग्रन्थ अव्यवस्थित सिद्धान्तों, कुविचारों और अपशब्दों का जंगल है।

इसी तरह के अन्य और भी विचित्र सिद्धान्त अपरिपक्व मीमांसक कमलाकान्त द्वारा 'धर्मशुद्धि' ग्रन्थ में स्थापित किये गये हैं। ऐसे ही अधकचरे विचार समाज एवं राष्ट्र के विखण्डन की आधारभूमि तैयार करते हैं।

धर्मशुद्धि ग्रन्थ का प्रतिज्ञा वाक्य

" 'धर्मशुद्धि' ग्रन्थ स्वयम् में परिपूर्ण है। इसीलिए कि इसके सारे वाक्य वेदानुगम्य हैं। धर्मशास्त्रनुगम्य हैं। अत एव यह ग्रन्थ ग्राह्य है।"

सम्पादकीय पृष्ठ ७

विज्ञ पाठक और विद्वज्जन आगे के पृष्ठों पर अपरिपक्व मीमांसक कमलाकान्त की वेदानुगामिता और धर्मशास्त्र अनुगामिता का अवलोकन करें।

(ऊपर के चार वाक्यों में दो अशुद्धियाँ हैं। इसलिए के स्थान पर 'इसीलिए' और धर्मशास्त्रानुगम्य के स्थान पर 'धर्मशास्त्रनुगम्य' लिखा गया है।)

गाली शास्त्र

'धर्मशुद्धि' ग्रन्थ में कमलाकान्त मीमांसक द्वारा प्रयुक्त गालियाँ

पापात्मा (६७), निकम्मापन (६९), मदमस्त सांड़ (८२), घुटमुण्ड पाखण्डियों (८३), दुरात्मा, पिशाच (९३), पाखण्डी, विकर्मस्थ, बैडालव्रती, धूर्त, हेतुक, बगलाभक्त (१४१), खञ्झड़, कलंकभूत (१४६), वकवादिता (१५२), नरपिशाच, हरामखोर, महापातकी (१५४), जूता मारना (१५५), अर्थलोलुप, प्रतिष्ठालोलुप, कुकुरमुत्ते, कुकर्मियों, दुत्कारना (१८०), पामरजन, दयानन्द और श्रीरामशर्मा जैसे पातकियों (१८१), कथक्कड़, मूर्ख, ज्ञान-शून्य, अड़बड़ा, तारतम्यहीन, बकना, बकवास (१८३), नीचता, मोहग्रस्त, अधोमार्गगामी, पाखण्ड (१८४), अनादिवासना, दूषितमानस, स्वार्थपरायण, तुच्छ, शरीरपोषी, विभुतायशो लोभी, कुत्सितमुख, कबाड़, अर्थपिपासु, स्वार्थी, लुच्चा (२०५), पामर (२०६), अंगूठा छाप (२०७), वेदान्ती का अनर्गल प्रलाप (२१२), भोगपिपासुओं, कुत्सित छर्दन (२५५), शठता (२७०), व्यभिचारी पुरुष, अपार मूढ़ता (पृष्ठ २७२)।

यम स्मृति और हारीत स्मृति के समर्थकों के लिए प्रयुक्त गालियाँ- भ्रष्टाचार प्रवर्तक, स्त्रैण, धनलोभी, जनलोभी, नरकगामी, कुत्सित, अनुपासित गुरु, मर्यादा विरोधी, छुछहड़ों का अनर्गल प्रलाप मात्र (२१६), कदाचार प्रवर्तन, नीचता, एकजात नहीं, त्रिजात आदि।

श्री आशारामजी बापू और स्वामी अड़गड़ानन्द जी के लिए शूद्र महात्मा शब्द का प्रयोग, पाखण्डी शब्द का प्रयोग एवं विकर्मस्थ शब्द का प्रयोग किया गया है (२५३, २५४, २५५ पृष्ठ)।

डॉ. कामेश्वर उपाध्याय, प्रो. शिव जी उपाध्याय, श्री चान मिसिर जी, प्रो. राजेन्द्र मिश्र, प्रो. विद्यानिवास मिश्र को इस पुस्तक में लाँछित करने का प्रयास किया गया है (पृष्ठ २६०)।

ज्योतिषविभाग के एक प्रोफेसर जिन्होंने विदेश यात्रा की थी- को लाँछित करने का प्रयास किया गया है। पृष्ठ १२५

गर्ग गोत्र के एक महामनीषी को नाम लिये बिना लाँछित करने का प्रयास किया गया है (पृष्ठ २५९)। यहीं पर 'निकलुआ' होने का दर्द वर्णित है जिसे कमलाकान्त भोग चुके हैं।

स्वामी नारायण सम्प्रदाय के सन्तों को दस बार से अधिक गालियाँ दी गई हैं। आज स्वामी नारायण सम्प्रदाय न केवल भारत में बल्कि विदेश में भी सेवा के क्षेत्र में अग्रगामी है। इससे एक वर्ग में धर्मान्तरण रुक गया है।

धर्मशुद्धि ग्रन्थ में दो सौ से अधिक गालियों का प्रयोग अपरिपक्व मीमांसक कमलाकान्त ने किया है। इस ग्रन्थ को 'गालीकोष' कहना उपयुक्त है। ये सारी गालियाँ वेदानुगम्य हैं। इनसे स्वर्ग की प्राप्ति होगी। वेदैक समधिगम्य हैं ये. सारी गालियाँ ऐसा अपरिपक्व मीमांसक कमलाकान्त का कहना है।

धर्मशुद्धि ग्रन्थ में एक हजार से अधिक बार 'चोदना' शब्द की आवृत्ति की गयी है पृष्ठ ७१ से २५०। किसी-किसी पृष्ठ पर तो यह शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपरिपक्व मीमांसक 'चोदना ग्रस्त' बीमारी का शिकार है।

अपरिपक्व मीमांसक कमलाकान्त का मानना है कि धर्म का एकमात्र लक्षण है- **'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः'** पृष्ठ ७१

विश्वविश्रुत दार्शनिक कणाद का धर्म लक्षण- **'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'** मीमांसक की दृष्टि में निरर्थक है; क्योंकि कुमारिल भट्ट ने इसका खण्डन कर दिया है। **(कहाँ कणाद और कहाँ कुमारिल भट्ट?)**

अपरिपक्व मीमांसक कमलाकान्त का समग्र ज्ञान तन्त्रवार्तिक, शबरभाष्य, जैमिनि सूत्र और मनुस्मृति तक सीमित है। मनुस्मृति की टीकाओं के समालोचनात्मक विचार को भी यह व्यक्ति नहीं जानता।

जिज्ञासा भाव

क्या

सभ्य समाज किसी ऐसे व्यक्ति के उपदेशों, तर्कों और वचनों को स्वीकार कर सकता है जिसने पग पग पर गालियों का प्रयोग किया हो?

क्या

सनातन धर्म 'पूर्व मीमांसा' मात्र है? क्या स्वर्ग प्राप्ति कारक यज्ञों के अतिरिक्त और कोई पुरुषार्थ नहीं होता?

क्या

उत्तर मीमांसा (उपनिषदें), शताधिक स्मृतियाँ, निर्णय सिन्धु, धर्मसिन्धु, अद्वैत वेदान्त, योगग्रन्थ, रामायण, महाभारत, पुराणादि, ज्यौतिषग्रन्थ, आयुर्वेद ग्रन्थ जीवन के धार्मिक दिशा को निर्देशित नहीं करते?

क्या

सांख्य योग, ब्रह्मसूत्र, पातञ्जलयोगदर्शन, योगवासिष्ठ, प्राचीननव्यन्याय-दर्शनादि, श्रीमद् भगवद्गीता आदि सद्ग्रन्थ 'धर्म' को उपदेशित, व्याख्यायित या प्रतिपादित नहीं करते?

यदि पूर्वमीमांसा ही धर्म है तो वह मर चुका है; क्योंकि आज मीमांसा याग जीवित नहीं हैं।

विराट् हिन्दू समाज ईश्वर को मानता है; जबकि पूर्व मीमांसा उसका खण्डन करती है।

पूर्व मीमांसकों के ही कारण आदि शंकराचार्य को पीड़ा झेलनी पड़ी थी। इन्हीं लोगों ने गोस्वामी तुलसीदास को धूत, अवधूत, जुलाहा, अघोरी आदि कहा था।

सनातन धर्म में इन्हीं मीमांसकों के कारण निरंतर सांख्यकीय गिरावट आयी। समाज में असंवाद और विसंवाद फैला। शूद्र उपेक्षित हुए। इनका धर्मान्तरण हुआ और अंततः राष्ट्र का विखण्डन हुआ।

विचारणीय

जो व्यक्ति एकादशी के दिन गाय, ऊँट, बकरों को भार कर खाते हैं उनके साथ भी किसी भी प्रकार का व्यवहार नहीं करना चाहिए। पृष्ठ २५९

(वाक्य अशुद्ध है- जो व्यक्ति.........खाता है उसके साथ भी)

विशेषत: बकरीद के दिन आने वाली एकादशी का व्रत सकल सनातनी जनता करे, ऐसा हमारे आचार्य का मानना है। पृष्ठ ११

क्या एकादशी के अतिरिक्त दिनों में गाय, ऊँट, बकरों को खाने वालों से व्यवहार करना चाहिए? बकरीद के दिन एकादशी तिथि वर्षों में कभी-कभार मिलती है। अपरिपक्व मीमांसक कमलाकान्त को यह भ्रम है कि मुसलमानों का बकरीद पर्व एकादशी तिथि के दिन पड़ता है। इनका ज्ञान 'तन्त्रवार्तिक' से आगे नहीं जा सकता। मुसलमानों के बारह चान्द्रमास हैं; जैसे- १ मुहर्रम २ सफर ३ रवि उलव्वल ४ रविउस्सानी ५ जमादिउलव्वल ६ जमादि उस्सानी ७ रज्जब ८ सावान (सबन) ९ रमजान १० सव्वाल ११ जिल्काद और १२ जिलहिज। जिलहिज (बारहवाँ मास) की दसवीं तारीख को इद-उज-जुहा (बकरीद) कहते हैं। यह दसवाँ दिन दशमी, एकादशी तथा द्वादशी किसी भी तिथि को पड़ता है। तिथि वृद्धि होने पर द्वादशी, तिथि क्षय होने पर दशमी और सामान्यतिथि क्रम होने पर एकादशी को बकरीद पर्व पड़ता है। मीमांसकों के पशुयागवत् है मुस्लिमों का बकरीद त्यौहार। मीमांसक कमलाकान्त त्रिपाठी का संस्कृतज्ञान सामान्यस्तर का है। ये संस्कृत भाषा में श्रेष्ठग्रन्थ का प्रणयन नहीं कर सकते और हिन्दी भाषा का इनको संस्कार नहीं प्राप्त है। प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है। इस प्रकृति और बुनावट को समझे बिना व्यक्ति उपहास का पात्र बनता है। विद्वज्जन देख सकेंगे कि यह व्यक्ति हिन्दी भाषा के प्रौढ़ ज्ञान से कितना अपरिचित है, पर इसका ज्ञान दम्भ हिमालय से भी भारी है।

'धर्मशुद्धि' ग्रन्थ में विद्यमान भारी अशुद्धियाँ

- उसमें यवक्षेत्र ही वेदि होती और उस क्षेत्र का 'खल' (खलिहान) उत्तरवेदि होती है। पृष्ठ ६। ...अशुद्ध।

  यहाँ- **'यवक्षेत्र' वेदि होता है**- ऐसा वाक्य प्रयोग बनेगा।

- 'सुनते जाइये' पृष्ठ ७। अशुद्ध

  यहाँ भाव दोष है। ग्रन्थ श्रवणीय नहीं होता पठनीय होता है। सुनते जाइये की जगह **'पढ़ते जाइये'** उपयुक्त है।

- भक्ति भावना में सदा विचरण करने वाले गुजरात के श्री पिनाकिन जी तो एकादश सहस्र से अपनी सदस्या को उद्दीप्त किये ही हैं। पुरोवाक् पृष्ठ २३।... अशुद्ध।

  शुद्ध वाक्य होगा- **'श्री पिनाकिन जी ने...........सदस्यता को उद्दीप्त किया है।'**

- रघु का आप नाम सुने ही होंगे। वे विश्वजित् याग किये थे। उनके पास एक झोपड़ी मात्र थी जिसमें एक चटाई और घड़ा मात्र थे। पृष्ठ ९। अशुद्ध वाक्य।

  शुद्ध वाक्य इस प्रकार होगा- **रघु का नाम आपने सुना ही होगा। उन्होंने विश्वजित् याग किया था। उनके पास एक झोपड़ी थी जिसमें मात्र एक चटाई और घड़ा था।** 'मात्र' का दो बार प्रयोग अनावश्यक है।

- तुम मेरी विद्या यथावत् ग्रहण किये हो। तुम मुझसे चौदह विद्यायें ग्रहण किये हो। पृष्ठ ९। **इन दोनों वाक्यों में भी वही दोष है।**

- धनुष उठाकर प्रत्यञ्चा चढ़ाये और सीधे कुबेर के ऊपर चढ़ायी किये। पृष्ठ १०।... अशुद्ध।

  इस वाक्य में व्याकरण और भाव जनित अशुद्धियाँ हैं। 'धनुष की प्रत्यञ्चा' अथवा 'धनुष पर प्रत्यञ्चा' चढ़ायी जाती है।

- अतः विधि अपने प्रवर्तकत्व की सिद्धि के लिए फल का आक्षेप करेगा ही। पृष्ठ ११। अशुद्ध।

  हिन्दी में 'विधि' स्त्रीलिङ्ग है। यदि संस्कृत से इस शब्द को लिया जायेगा तो 'विधिः' लिखना होगा।

- राजा नृग का नाम आप सुने ही होंगे। पृष्ठ १९। अशुद्ध

  'ने' का भोजन करना कमलाकान्त की आदत है। 'आपने सुना ही होगा।'

- 'निम्न' श्लोक भी आकलनीय है। पृष्ठ २०। अशुद्ध

  निम्न का अर्थ 'नीच' या 'हीन' होता है। अतः 'निम्नलिखित', 'निम्नवत्' या 'निम्नोक्त' होना चाहिए।

- यह 'वस्तु' आज भी देखा जाता है। पृष्ठ २५। अशुद्ध

  'वस्तु' स्त्रीलिङ्ग है।

- भगवान् श्रीकृष्ण भी 'अर्जुन कर सकता है', ऐसा समझकर ही ईश्वर में चित्तसमाधानरूप पूर्वसाधन का विधान किये। पश्चात् प्रमादजन्य असामर्थ्य की आशङ्का करके साधनान्तर का विधान करते चले गये। पृष्ठ २८

  इन दोनों वाक्यों में व्याकरण जनित अशुद्धि है। साथ ही असामर्थ्य दोष भी है। (यहाँ 'ने' का प्रयोग होगा।)

- सिपारिश। पृष्ठ २९। अशुद्ध

  'सिफ़ारिश' शब्द शुद्ध है। यह फारसी शब्द है।

- स्वामी के कारण ही **वह** अपने कर्म से प्रमाद भी किया। पृष्ठ २९। अशुद्ध
- तुलसीदास जैसे महात्मा भी उनको अपने गले लगाये। पृष्ठ ३९। अशुद्ध

  महात्मा ने भी उनको अपने गले लगाया।

- अन्त में वह तीर्थयात्रा में निकला। पृष्ठ ३९। अशुद्ध

  यहाँ 'में' के स्थान पर 'पर' होगा।

- 'किं बहुना स्वर्ग में विद्यमान पितर भी उससे धन्य हो जाते हैं।' पृष्ठ ५१।

विषयजन्य अशुद्धि। 'विधूर्ध्व भागे पितरो वसन्ति' (सि.शि.) वचन सिद्ध करता है कि पितर 'पितृलोक' में निवास करते हैं और चन्द्रमा के ऊर्ध्व भाग में पितृलोक होता है। 'स्वर्गस्थितास्ते पितरोऽपि धन्या' पाठभेद है। मूलपाठ है- 'अपारसंवित् सुखसागरेऽस्मिन् लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः।'

- 'सर' पृष्ठ ३९। अशुद्ध

'सिर' शुद्ध है। सर तो Sir का रूप है।

- मुझे 'आयु' मिल गया। पृष्ठ ९७। अशुद्ध।

आयु स्त्रीलिङ्ग है। 'आयु मिल गयी।'

- 'गुञ्जाइश' १०५ पृष्ठ ...अशुद्ध

'गुंजाइश' फारसी शब्द है। इसमें 'ञ्' नहीं होता।

- खण्डन हो जाने पर वैदिकमार्गपरित्यक्ता को धर्मभ्रष्ट कहा जायेगा। पृष्ठ १३८

यहाँ 'परित्यागी' शब्द होगा। यदि संस्कृत भाषा में यह वाक्य होता तो 'परित्यक्ता' सही होता। यहाँ परित्यक्ता शब्द स्त्री का वाचक हो गया है।

- दरपयोग। पृष्ठ १५७। अशुद्ध

दुरुपयोग होगा। यह शब्द संज्ञा वाचक है।

- सन्यासी आदि विरक्तों को दान देना पाप है। पृष्ठ १६५। अशुद्ध

'संन्यासी' होना चाहिए।

- अजगर बन कर स्वयम् ही वे अपने दुराचार को प्रकट कर दिये। वशिष्ठ। भाईयों। १६३ पृष्ठ।

'स्वयं', वसिष्ठ एवं 'भाइयों' शब्द का प्रयोग शुद्ध होगा। 'उन्होंने अपने दुराचार को प्रकट कर दिया' शुद्ध वाक्य होगा।

- 'जो पुरुष श्राद्ध में पिण्डग्रहण के लिए साक्षात् प्राप्त हुए पिता के हाथ में पिण्ड नहीं दिया' पृष्ठ १६४। अशुद्ध

  यहाँ 'जिस पुरुष ने' वाक्य शुद्ध होगा।

- 'जो पिता के हाथ में पिण्ड नहीं दिया' पृष्ठ १६५। अशुद्ध

  'जिसने पिता के हाथ में पिण्ड नहीं दिया।'

- जिस शाखा का था वह अपनी स्मृति को अपने शिष्यों को पढ़ाया। पृष्ठ १९०। अशुद्ध

  जिस शाखा का था उसने अपनी स्मृति को अपने शिष्यों को पढ़ाया।

- विद्यायों। पृष्ठ २२५। अशुद्ध।

  'विद्याओं' शुद्ध होगा।

- कथापुरान। पृष्ठ २५२। अशुद्ध।

  'कथा-पुराण' शुद्ध रूप है।



'धर्मशुद्धि' नामक इस पुस्तक में पग पग पर अशुद्धियाँ हैं। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि प्रमाद और अतिआत्मविश्वास में आकर लेखक ने भाषा, भाव, व्याकरण, शैली और औचित्य का उल्लङ्घन किया है। 'ने' का प्रयोग और 'उपमा' में औचित्य का प्रयोग इस पुस्तक में कहीं कहीं देखने को मिलता है।

मनमाने विशेषण

महर्षि जैमिनि (२२), भगवान् जैमिनि (३२), भगवान् मण्डन मिश्र (८), भगवान् पाणिनि (३१, ३४), विष्णुगुप्त 'चाणक्य', वासुदेव कृष्ण (१५६), महर्षि व्यास, विप्रर्षि व्यास (१६५), भगवान् मनु (२६८)।

इसी तरह के अनेक विशेषण नामों के साथ पूरी पुस्तक में दिये गये हैं। 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः' परिभाषा के अनुसार ऋषि, महर्षि या विप्रर्षि विशेषण केवल मन्त्र द्रष्टा के साथ ही लगेगा। व्यास को महर्षि कहना, मनु को भगवान् कहना, पाणिनि और जैमिनि को भगवान् कहना उचित नहीं है। इंनमें भगवत्ता या षड्ऐश्वर्य नहीं है। मण्डनमिश्र को आचार्य कहना उचित होगा। मनु को महाराज कहना श्रेष्ठ होगा। 'मुनित्रयं नमस्कृत्य' प्रथित ही है। पाणिनि को प्रो. वासुदेव अग्रवाल आदि ने मुनि अभिहित किया है।

'भगवान्' श्रीकृष्ण (पृष्ठ १९) उचित विशेषण है।

'द्विप इव मदान्धः' **गैड़े की तरह मतवाला** (पृष्ठ ३२) वाक्य मनमाना अर्थ और सादृश्य प्रस्तुत कर रहा है। ऐसे में द्विपास्य (गणेश) गैड़ा मुख कहलायेंगे।

धर्मशुद्धि ग्रन्थ में सर्वत्र गालियों की ही तरह मनमाने विशेषणों का प्रयोग किया गया है। लेखक यह मान कर चल रहा है कि उसकी पुस्तक को पढ़ने वाला व्यक्ति सामान्य बुद्धि का होगा। उसे गूढ़ तत्त्वों का ज्ञान नहीं होगा। साथ ही उसे आचार्य मान कर उसका प्रतिपाद्य स्वीकार कर लेगा।

अश्लीलता का व्यापक प्रदर्शन

कमलाकान्त त्रिपाठी न केवल अपरिपक्व मीमांसक हैं; बल्कि काम (Sex) से पीड़ित भी हैं। खुशवंत सिंह के लेखों में जिस तरह से काम ही मुख्य प्रतिपाद्य होता है उसी तरह से इनके लेखों में मुख्यतः गाली-गलौज और अश्लील भावों का प्रदर्शन है। उदाहरण के लिए कुछ वाक्यों और अंशों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है

- यह **वेश्या का स्तन** नहीं है कि जो चाहे जब चाहे पकड़ ले। पृष्ठ ५८।
- बड़े ही सात्विक महात्मा थे। संयोग की ही बात थी किसी **लड़की के चंगुल** में आ गये। दश मिनट में ही आठों वर्षों की तपस्या खाक में मिल गयी। पृष्ठ ६० (इस वाक्य में 'दश' और 'आठों' मनमाना प्रयोग है।)
- अवकीर्णी ब्रह्मचारी को चौराहे पर **गर्दभ का आलभन** कराना चाहिए! पृष्ठ ६०। (यह तो कमलाकान्त की कृपा है कि उन्होंने गदहे के आलभन-प्रकार का वर्णन विस्तार पूर्वक नहीं किया।)
- चोदना, जिसे आप धर्म में प्रमाण मान रहे हैं वह प्रमाण ही नहीं हो सकती, धर्म जैसे विषय में उसकी प्रमाणता तो **नपुंसक में सुरतसुख की तरह** बहुत दूर है। पृष्ठ ७६।
- इसके अनन्तर **सुरत (Sex) में प्रसक्त कामी** की तरह चोदना के अप्रामाण्य साधन में प्रसक्त बौध मत आयेगा। पृष्ठ- ७९।
- जैसे **कामादि (Sex) दोष दूषित नयन** को कामिनी के न होने पर भी स्थाणु (ठूठ) के छाया दर्शन मात्र से विचित्रवस्त्राभरण कामिनी का ज्ञान होता है। पृष्ठ ८०।
- **चोदना जन्य ज्ञान ही ज्ञान है।** पृष्ठ ८१।
- **सुरतादि (Sex etc) कर्मों का फल** तत्काल देखने को मिलता है। पृष्ठ १०६।
- अशास्त्रीय पद्धति से किया जाने वाला **सुरतव्यापार** (Sex Work) निरर्थक होता है। पृष्ठ २००।

इन बिन्दुओं के माध्यम से यह दिखलाया गया है कि **यह अपरिपक्वं मीमांसक काम (Sex) को लेकर भयानकरूप से कुंठित है। इसने अपनी 'धर्मशुद्धि' पुस्तक में हजार-बारह सौ बार 'चोदना' शब्द का प्रयोग किया है।**

मुम्बई की एक संस्था द्वारा शास्त्रीय विषयों पर आयोजित एक व्याख्यान में कमलाकान्त ने इतनी बार 'चोदना' शब्द का प्रयोग किया कि श्रोता समस्त विदुषी महिलायें और उनके साथ आये लोग सभागार छोड़ कर चले गये। आयोजकों के चेहरे शर्म से लाल हो गये। इसके बाद इनको किसी संस्था ने बोलने के लिए नहीं बुलाया।

क्यों गर्हित हो गया 'चोदना' शब्द

जैमिनी द्वारा प्रयुक्त धर्मलक्षण बाद के शास्त्रकारों, आचार्यों द्वारा किञ्चिदंश में ही स्वीकृत हुआ। इस लक्षण के द्वारा अन्यान्य विषयों द्वारा प्रतिपादित विषय- जो याग के अतिरिक्त थे अथवा आत्मा, मोक्ष या वैराग्य से युक्त थे- समाविष्ट नहीं हो सके। विश्वविश्रुत दार्शनिक कणाद का धर्मलक्षण शास्त्रज्ञों और समाज द्वारा व्यापक स्तर पर स्वीकृत कर लिया गया। फलतः बौखलाये मीमांसकों ने सांख्य, योग, न्याय एवं अद्वैत दर्शन के विद्वानों को लिखित गालियाँ देनी शुरु कर दीं। स्वाभाविक था कि इसका प्रतिकार होता ही। अन्य सभी शास्त्रज्ञों ने मीमांसकों के वीभत्स स्वरूप, स्वर्ग के भय का दोहन और अश्लीलता का प्रखर विरोध किया। **'चोदना' शब्द जो प्रेरणा का वाचक था** मीमांसकों की अश्लीलता के कारण महिलाओं को पुत्रोत्पत्ति हेतु उकसाने वाला बन गया। याग और धार्मिक कृत्यों के बहाने घर में घुसने वाले मीमांसक महिलाओं को सुरत क्रीडा (Sex) हेतु चोदित (प्रेरित) करने लगे। समाज में इसकी तीव्रतम प्रतिक्रिया हुई और मीमांसकों का सामाजिक बहिष्कार हो गया। जब मीमांसक गये तो उनका 'चोदना' धर्म भी गर्हित हो समाज से बहिष्कृत हो गया। आज तक उसी कृत्य का दुष्परिणाम है कि मीमांसा का चोदना और गायत्री मंत्र का 'प्रचोदयात्' उच्चारणीय नहीं रह गया। इसी कारण से गायत्री मंत्र का मौन जप होने लगा और सस्वर उच्चारण बंद कर दिया गया।

समाज ने 'चोदना' का धर्मपरक अर्थ ग्रहण करना बन्द कर दिया है। ऐसे में एक नहीं एक सौ मीमांसक इस शब्द को उसका खोया हुआ गौरव वापस नहीं दिला सकते। आज वैसे भी समाज में मीमांसकों का अस्तित्व नहीं रह गया है। निःश्रेयस् की प्राप्ति तथा आत्यन्तिक अभ्युदय की प्राप्ति को उपनिषदों, पुराणों, भक्तिग्रन्थों एवं काव्यग्रन्थों में धर्म के लक्षणरूप में स्वीकार कर लिया गया। केवल कर्मकाण्ड और याग जीवन के सभी कोणों को रंजित नहीं कर सकते। 'न त्वहं कामये स्वर्गं' की भावना याग प्रयोग से बड़ी हो उठी। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' तथा 'यो मां पश्यति सर्वत्र' ने संस्कृत में एवं 'सीय राम मय सब जग जानी' ने हिन्दी में विशाल फलक पर धर्म की उदात्तता को स्थापित किया। जीव ईश्वर अंश हो गया। फलतः मीमांसकों का चोदना, पतित, चाण्डाल, महापाप, स्वर्गभय, याग प्रयोग आदि शुभाशुभ धरा का धरा रह गया।

कमलाकान्त त्रिपाठी की पृष्ठभूमि

'धर्मशुद्धि' ग्रन्थ के लेखक डॉ. कमलाकान्त ने अपनी इस पुस्तक में न्यायालय, विश्वविद्यालय, प्राचीन विश्वनाथ मंदिर, पूज्य दयानन्द सरस्वती जी, पूज्य श्रीराम शर्माजी, पूज्य आशाराम बापूजी, पूज्य स्वामी अड़गड़ानन्द जी, स्व. प्रो. विद्यानिवास मिश्र जी, प्रो. शिवजी उपाध्यायजी, प्रो. राजेन्द्र मिश्र जी, डॉ. कामेश्वर उपाध्याय जी, अनेक मडलेश्वरों, श्रीकृष्ण भगवान्, ऋषि वसिष्ठ, शूद्र जाति के लोगों, कूर्मी, पटेल, कायस्थ जाति के लोगों, विद्याध्ययन-शोध में निरत लड़कियों, समाज के अन्यान्य सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों एवं स्तम्भों को अपशब्दों (गालियों), पतित-चाण्डाल आदि शब्दों से लाँछित करने का काम किया है। यह व्यक्ति कौन है? इसकी अभिलाषा क्या है? इसकी पात्रता कैसी है? यह जानना अति आवश्यक है। यह कितना शुद्ध है? यह करता क्या है? इस तथ्य को जान लेने के बाद इसके द्वारा प्रतिपादित विषय का रहस्य खुल जायेगा और विद्वज्जन तथा पाठक गण इसकी मानसिकता को सहज ही समझ सकेंगे।

उत्तरप्रदेश में भार्गवगोत्रीय ब्राह्मणों का एक गाँव है 'चपइल'। यह गाँव सोनभद्र (शोणभद्र) जिला मुख्यालय राबर्टस्गंज से १८ किलोमीटर पूर्व रामगढ़ कस्बा से ३ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस गाँव में त्रिपाठी उपाधिधारक ब्राह्मण निवास करते हैं। यहीं के एक परिवार में शिवगोविन्द त्रिपाठी थे। इन्होंने संस्कृत व्याकरण से आचार्य की उपाधि प्राप्त की थी। आप मेरे चाचा लगते थे। हमारे घर और इनके घर में पाँच पीढ़ियों का अन्तर है। यानी पाँच पीढ़ी पूर्व हमारे पूर्वज एक ही थे। शिबू चाचा स्वभाव से शाँत दिखते थे पर रहे बहुत अहंकारी। गाँव वालों को नीचा दिखाना उनके स्वभाव में था। अपने को सर्वश्रेष्ठ और दूसरे को अधम मानने की प्रवृत्ति कूट कूट कर भरी थी। उनकी

इसी आदत के कारण सारा गाँव धीरे-धीरे इनके परिवार से कट गया। मेरी और चाचा की बात होती रहती थी। जब मैं शास्त्री में अध्ययनरत था तब वे मुझसे प्रायश: व्याकरणशास्त्र की गूढ़ प्रवृत्तियों पर वार्ता करते रहते थे। इसी बीच अकस्मात् एक ऐसी पारिवारिक घटना घटी जिसने शिबू चाचा को तोड़ कर रख दिया। शिवगोविन्द त्रिपाठी के पुत्र उमाशंकर त्रिपाठी अध्ययन में प्रवृत्त नहीं होते थे। कम आयु में ही उनका विवाह कर दिया गया। इस आशा के साथ कि शायद पुत्र की प्रवृत्तियों में सुधार हो जाये। उमा भाई मुझसे आयु में प्राय: छ:-सात वर्ष बड़े थे। विवाह के बाद किसी बात पर शिबू चाचा ने उन्हें कुछ कह दिया और उमा भाई कोई चार माह घर से गायब हो गये। चाचा मानसिक रूप से बहुत परेशान रहने लगे। नई बहू का परेशान होना स्वाभाविक था। घर में काम करने के लिए तियरा गाँव से ही कुछेक माह पूर्व आये शिवचरन नामक एक युवक को रख लिया गया था। शिव चरन जाति से धोबी था और स्वभाव से अत्यन्त विनम्र और आज्ञाकारी। धीरे धीरे शिवचन्ना घर का प्रिय परिवारी जन बन गया। उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली था। श्याम तमाल की तरह छरहरे सुघड़ बदन पर निकलती हुई मूँछें उसे और आकर्षक बना रही थीं। प्रायश: वह शर्मीला था। घर में पानी पहुँचाने, अनाज को ठीक रखने से लेकर वह महिलाओं के कपड़े तक धो देता था। पर्याप्त साहचर्य, मृदु स्वभाव और समर्पण के पलों में उमा भाभी और शिवचन्ना में एकत्व स्थापित हो गया- 'कनकवेली वृषभानु दुलारी श्याम तमाल चढ़ी।' ब्राह्मण और शूद्र सामाजिक प्रक्रिया से उत्पन्न व्यवस्था है; पर शरीर और उसके भीतर स्पन्दित हो रहा दिल 'जैविक' प्रक्रिया है। फलत: उस प्रेम की लतिका में पुष्प-फल का दर्शन होने लगा। पाँचवे मास में उमा भाई जब लौट कर घर आये तो पत्नी के 'दोहद लक्षण' से प्रसन्न होने की जगह आग-बबूला हो उठे। संन्यास लेने की इच्छा जतायी, ट्रेन से कट जाने का मन हुआ तो कभी उस अधम शिवचन्ना की हत्या

कर डालने की भी बात दिमाग में आयी। अनुभवी बुजुर्ग शिबू काका ने ढ़ाँढस दिलाया- 'घर की इज्जत को बाहर उछालोगे तो ऐसी आग लगेगी जिसमें परिवार का पूरा भविष्य जल जायेगा। शाँत रहो। पहले ही मूर्खता कर चुके हो। अगर बाहर नहीं भागे होते तो आज यह दशा देखने को नहीं मिलती। बेटा; मेरा अनुभव कहता है- अपनों से हारने के बाद और मेहर से मार खाने के बाद उसका बखान घर के चौखट से बाहर नहीं करना चाहिए।'

उमा भाई ने नीलकण्ठ की तरह विषपान किया। भाभी ने भी उलाहना, गाली, मार सब कुछ सहा पर मुंह से उफ़ तक नहीं किया। उनके चेहरे पर एक प्रशान्ति, निर्विकार भाव तैरता दिखता था। इस पूरे प्रकरण ने शिबू काका के अहंकार को गला कर रख दिया। अब वे ज्यादा मानवीय हो गये थे पर उनका मौन पहले से और ज्यादा बढ़ गया था। शिवचन्ना गाँव छोड़ कर चला गया। अपने गाँव भी नहीं गया। उसका क्या हुआ कोई नहीं जानता; पर उसके और भाभी के प्रेम का प्रतिफलन 'कमलाकान्त' नामक यह व्यक्ति है। लक्ष्मी चंचला होती है। उसका कान्त यानी स्वामी। लक्ष्मी (भाभी) का प्रतिफल भविष्य का मीमांसक बनेगा यह वेधा के अतिरिक्त और किसी को ज्ञात नहीं था। हाँ; उमा भईया की बेवकूफी का परिणाम इस परिवार को अवश्य भुगतना पड़ा। यह परिवार गाँव में आज भी 'निकलुआ' बना है। उसकी खोई प्रतिष्ठा; कुजात से स्वजात में गिने जाने का भाव आज भी प्रतीक्षा में है।

कमलाकान्त बचपन से ही अबाटी था। गाली-गलौज में प्रवीण, दूसरों को अपमानित करने में दक्ष। कई बार सहपाठियों से मार खाने के बाद भी उस पर असर न पड़ता। धीरे धीरे शास्त्री-आचार्य की परीक्षा पास करने के बाद शोधकार्य करने लगा। इसी अवधि में उसे एक और दोष ने आ घेरा। उसे समलैंगिक सम्बन्ध ज्यादा भाने लगे। शोधकार्य करने के दौरान ही इसका विवाह हो गया। इसके एक समलैंगिक मित्र ने इसकी पत्नी के साथ ज्यादती कर

डाली। अस्सी और मुमुक्षु भवन के अपने मित्रों और गुरुओं के पास आकर निरीह रोता रहा कमलाकान्त। आज वही कमलाकान्त भारतवर्ष की संत परंपरा, विद्वत् परंपरा और शास्त्र परंपरा को गाली दे रहा है। इसका मित्र बना हरिप्रसाद द्विवेदी ज्योतिष से आचार्य कर मक्खी मार रहा है। इसे छात्र जीवन में लड़के 'छपरहिया...' कहते थे। इसका और कमलाकान्त का सम्बन्ध अप्राकृतिक है। ऐसे दो जन विश्व को पाप मुक्त कराने चले हैं। हरिप्रसाद को अध्ययन-लेखनादि में अभिरुचि नहीं है। इसे कभी कभार ज्योतिष विभाग सम्पूर्णानन्द में दो-तीन माह पढ़ाने के लिए क्या मिल जाता था इसने अपने को प्राध्यापक लिखना शुरु कर दिया। ध्येय है कमलाकान्त की नियुक्ति एक ऐसे कुलपति ने प्रवक्ता पद पर की थी, जो उत्कोच के लिए कुख्यात रहा। पद पर से हटते ही जिसने ए.सी. बसों को चलवाना शुरु किया था। ऐसे दो छद्म विद्वानों के पीछे खड़े श्री बटुक प्रसाद शर्मा तथाकथित महामंत्री 'श्री काशी विद्वत् परिषद्' हैं। तथाकथित इसलिए क्योंकि इसी संस्था के एक और महामंत्री जी काशी में विद्यमान हैं। श्री बटुक प्रसाद जी ने पिता की मृत्यु के काल में तेरही बीतने के पहले ही यजमानी कमाने का अधर्म किया था।

आज का समस्त समाज अपने दोष को गूढ़, अप्रकटनीय और अज्ञात समझता है तथा दूसरों को पापी, पाखण्डी, नीच और पतित कहता है। इन्हीं सामाजिक दुष्प्रवृत्तियों की उपज हैं कमलाकान्त, हरिप्रसाद और इनके महारथी मित्र। फलतः अशुभ, अमंगल और छलधर्म से युक्त है 'धर्मशुद्धि'। इन रहस्यों पर से पर्दा उठाना आवश्यक था। आगे सुधी पाठक शास्त्रचर्चा के छद्मों को आसानी से समझ लेंगे; क्योंकि संस्कार चिरंतन होते हैं और वे मानसिक वृत्ति की जटिल संरचनाओं को इंगित करते हैं।

पूज्य स्वामी अड़गड़ानन्द जी सिद्ध योगी हैं। उन्होंने परम्परा से पढ़ाई नहीं की, पर संत कबीर की तरह 'सद्गुरु' की अवस्था प्राप्त हैं। आप समाज

को जोड़ते हैं तोड़ते नहीं। वे शूद्र नहीं है। वे पहुँचे हुए तत्त्वज्ञ हैं। यदि वे शूद्र हैं तो भारत में वर्तमान में कोई विप्र नहीं है। श्री आशाराम बापू को शूद्र कहना आकाश पर थूकना है। वे महात्मा हैं, संत हैं। ब्राह्मण शंकराचार्यों के समतुल्य हैं। माता अमृतानन्दमयी को शूद्रा कंहने वाला अरुन्धती, सीता, अनसूया को शूद्रा कहेगा ही। **योगसिद्ध लोगों पर भोगी जनों द्वारा टिप्पणी देने का अधिकार नहीं होता है।** प्रो. विद्यानिवास मिश्र जब तक जीवित रहे वे ब्राह्मण समाज के पूज्य और मार्गदर्शक बने रहे। उनके यहाँ देश के विद्वान् और प्रोफेसर पहुँचकर पद वन्दन करते थे। प्रो. शिवजी उपाध्याय सिद्ध सरस्वती हैं। उनको देखकर ब्राह्मण कैसा होता है? यह बोध होता है। डॉ. कामेश्वर उपाध्याय ने श्रेष्ठ कुल की विदुषी महिला से विवाह किया है। मैंने उनके ससुराल पक्ष को देखा है। वे लोग सारस्वत पंजाबी हैं। डॉ. उपाध्याय हिन्दुत्व के पक्षधर हैं। आप महामना मालवीय को अपना आदर्श मानते हैं। प्रो. चान मिसिर, प्रो. राजेन्द्र मिश्र आदि सभी पूज्य जन हैं। इन लोगों पर कीचड़ उछालने वाला धोबी ही होगा। वैसे भी अपवाद लगाने का काम और श्रीराम के परिवार को समाप्त करने का काम अवध के एक धोबी ने ही किया था। पहले अपनी पृष्ठभूमि को देखें कमलाकान्त जी बाद में अन्य जनों की धर्मशुद्धि करें। राष्ट्र एवं समाज के हित के लिए धर्मपथ पर चलते हुए कुछ अप्रिय निर्णय लेने पड़ते हैं। मुझे मालूम है इस अप्रिय सत्य तथ्य के रहस्योद्घाटन से परिवार का अहित हुआ है। मैंने 'त्यजेदेकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्' सिद्धान्त का पालन किया है।



क्या समुद्र लङ्घन, विदेश गमन त्रैवर्णिक के लिए महापाप है?

'ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्ण चोरी, गुरुपत्नी गमन ये चार महापाप कहलाते हैं और इन महापाप युक्त व्यक्तियों के साथ रहना भी महापाप है।'

कमलाकान्त और उनके मित्रों ने धर्मशुद्धि ग्रन्थ में लिखा है कि समुद्र लंघन करने वाले, विदेश गमन करने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य महापापी होते हैं। समुद्र लंघन उन्हें महापापी बना देता है। निषेध वचन कलिवर्ज्य प्रकरण से दिया गया है- **द्विजस्याब्धौ तु नौयातुः शोधितस्यापि संग्रहः।** फलतः समुद्रगामी पतित होता है। पृष्ठ २२, २५३, २५८

उत्तर

i. सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जीवन वहीं है जहाँ जल है। जल का अधिष्ठाता समुद्र होता है; जिसे अपांपतिः, वारीश आदि नाम से जाना जाता है-

बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्यतोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस।। लंकाकाण्ड ५।।

यदि समुद्र नहीं होगा तो वाष्पन क्रिया नहीं होगी। वाष्पन क्रिया नहीं होगी तो मेघ नहीं बनेंगे। मेघ नहीं तो वृष्टि नहीं। यह पृथ्वी जीवन विहीन हो जाए यदि समुद्र न हों। अतः जीवन वहीं है जहाँ समुद्र है।

ii. समुद्र दो प्रकार के होते हैं, प्रथम- भव सागर (समुद्र) और द्वितीय जल सागर (समुद्र)। भव सागर को पार करना पुरुषार्थ है। जो ज्ञान और कर्म से भव सागर नहीं पार कर पाते उन्हें भक्ति मार्ग से पार करना पड़ता है। या तो आप स्वयं पार करें या फिर ईश्वर नाविक बन कर अपने भक्त को पार उतारें-

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।। गीता १२/७।।

(हे पार्थ! मुझ में चित्त लगाने वाले उन प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूँ।)

इससे सिद्ध होता है कि ईश्वर नाविक बन कर संसार सागर से अपने भक्तों को पार लगाता है।

iii. जल वाले समुद्र को पार नहीं करना चाहिए यह कुछ लोगों (केचित्, अपरे) का मत है। समुद्र स्नान विहित होता है। समुद्र में स्नान का निषेध नहीं है। धर्मसिन्धु ग्रन्थ में लिखा है- समुद्रे पौर्णमास्याममावास्यादिपर्वसु स्नायात्। भृगुभौमदिने स्नानं वर्जयेत्-

अश्वत्थसागरौ सेव्यौ न स्पर्शस्तु कदाचन।
अश्वत्थं मन्दवारे च सागरं पर्वणि स्पृशेत्।। धर्म. प्रथम परिच्छेद

(पूर्णिमा और अमावास्या पर्व में समुद्र स्नान करना चाहिए। पर्व के दिनों में सागर का स्पर्श करना चाहिए। सूर्य की द्वादश संक्रान्तियाँ, पूर्णिमा, अमावास्या, अष्टमी एवं चतुर्दशी तिथि की 'पर्व' संज्ञा होती है।) इससे सिद्ध होता है कि समुद्र में प्रविष्ट करना सर्वथा निषिद्ध नहीं है। रामेश्वरम् का दर्शन और समुद्र स्नान सार्वकालिक है। ऐसे में समुद्र को नौका या समुद्री जहाज से पार करना निषिद्ध माना गया है- 'द्विजस्याब्धौ तु नौयातुः' में भी इसी बात का उल्लेख है। यह वाक्य वेद वाक्य नहीं है। बाद का बनाया हुआ श्लोक है।

iv. **क्या महाराज मान्धाता महापातकी, पतित और चाण्डाल थे?**

धर्मशुद्धि के पृष्ठ २६६ पर कमलाकान्त ने लिखा है- सत्यव्रत त्रिलोक विजयी मान्धाता- 'मान्धाता क्व गतस्त्रिलोकविजयी राजा क्व सत्यव्रतः।' तथा १४६ पृष्ठ पर 'हमारे इतिहास में आये हुए मान्धाता आदि सार्वभौम राजाओं का आपको बोध नहीं।' यदि मान्धाता ने त्रैलोक्य विजय कर सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य किया तो समुद्र लंघन के कारण वे पतित, चाण्डाल और महापापी क्यों नहीं हुए? मान्धाता ने संपूर्ण पृथ्वी का शासन किया था यह सर्वविदित है।

v. **आचार्य बलदेव उपाध्याय का ऐतिहासिक मन्तव्य-**

आचार्य बलदेव उपाध्याय की पुस्तक "वैदिक साहित्य और संस्कृति" की कुछ पंक्तियाँ पृष्ठ ३८७ से यहाँ पर उद्धृत की जा रही हैं-

""तुग्र के पुत्र 'भुज्यु' की आख्यायिका का निर्देश अनेक स्थलों पर किया गया मिलता है। इस विख्यात कथा के अनुसार भुज्यु ने बहुत लम्बी समुद्र यात्रा की थी जिसमें एक सौ डाँड़ों के जहाजों का उपयोग किया गया था। इतने सुसज्जित जहाज के डूबने की आशंका ने 'भुज्यु' को उस समुद्र में बेचैन कर डाला और अपनी रक्षा के निमित्त उसने अश्विनीकुमारों को पुकारना आरम्भ किया। इन्हीं दयालु देवताओं ने उस जहाज को किनारे लगाया और अपने भक्तों के प्राण बचाये। इस कथानक से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वैदिक आर्य लम्बी समुद्र यात्रा करने से कभी मुंह नहीं मोड़ते थे तथा लम्बे लम्बे सौ डाँड़ों वाले जहाज बनाने और खेने की विद्या से भी भलीभाँति परिचित थे-

अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभने समुद्रे।
यदश्विना ऊहथुर्भुत्यमस्तं शतारित्रां नावमा तस्थिवांसम्।। ऋक् १/११६/५''

अंग्रेजों ने आक्षेप लगाया कि आर्यों को समुद्र का ज्ञान नहीं था और आचार्य बलदेव उपाध्याय ने आक्षेप का निराकरण कर डाला। उन्हें क्या मालूम था कि अपरिपक्व मीमांसक कमलाकान्त समुद्र यात्रा करने वालों को पतित और चाण्डाल घोषित कर देगा?

iv. **महाराज मनु प्रलय वेला में नौका से अपार जलधि पार कर हिमगिरि के उतुङ्ग शिखर पर आरूढ़ हुए। क्या वे पतित, चाण्डाल, महापापी और महापातकी थे?**

v. **समुद्र लंघन महापाप है या विदेश गमन महापाप अथवा दोनों सम्मिलित महापाप हैं?**

- समुद्र स्नान विहित है ऐसा धर्मशास्त्र बतलाता है।
- आकाश मार्ग से गमन का निषेध कहीं नहीं मिलता।
- राजा रघु ने 'द्यौ:' लोक का दोहन किया था-

मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा। रघुवंशम्

- प्राचीन राजाओं द्वारा इन्द्रलोक, चन्द्रलोक आदि में गमन का वर्णन प्राप्त होता है।
- सम्पूर्ण वसुधा पर वैदिक धर्म का प्रचार प्रसार था इसका वर्णन सभ्यता के इतिहास में प्राप्त है।

- आज तीस करोड़ हिन्दू विदेश यात्रा करता है। इसमें १२ करोड़ लोग बाहरी देशों के नागरिक हैं।
- उन्नीस सौ पचास के बाद से विदेश गमन समुद्र मार्ग से नहीं हो रहा है। आकाश मार्ग से विदेश गमन सस्ता और शीघ्रता कारक है। **क्या आकाश मार्ग से विदेश यात्रा करना महापाप है?**
- पृथ्वी मार्ग से यूरोप और रुस की यात्रा की जाती रही है। **क्या पृथ्वी मार्ग से विदेश यात्रा करना महापाप है?**
- **राम ने समुद्र लंघन किया था। उनके साथ सौमित्र लक्ष्मण भी थे। क्या ये दोनों महापापी हैं?**
- **हनुमान् ने समुद्र उत्प्लवन किया था। क्या वे पतित, चाण्डाल और महापापी थे?**
- मानसरोवर, ढक्केश्वरी देवी, अस्तगिरि (काबुल), शलातुर (पाणिनि का गाँव), तीनशक्तिपीठ पाकिस्तान और तीन शक्तिपीठ बंगलादेश में जाकर दर्शन करना भी विदेश गमन होने के कारण पतित, चाण्डाल और महापापी बनाने का कारक है?
- **क्या तीस करोड़ विश्वव्यापी हिन्दुओं को महापतित, चाण्डाल और पापी कहना किसी मीमांसक और धर्मशास्त्र के प्रवक्ता के अधिकार क्षेत्र में आता है?**

विदेश गमन निषेध के पीछे की राजनीति

ईसाई मिशनरियाँ नहीं चाहतीं कि हिन्दुओं के संत, विद्वान्, योगी, तपस्वी और समाज सुधारक ईसाई राष्ट्रों में जायें। उनके जाने से ईसाई समाज में हिन्दू धर्म के प्रति सद्भाव, रुझान और प्रेम बढ़ता है। वे हिन्दूधर्म स्वीकार भी करते हैं। अतः पैसा देकर, प्रचार कराकर, विविध प्रकार से वे विदेश गमन को रोकवाने में सहयोग करती हैं।

'श्री काशी विद्वत् परिषद्' के पदाधिकारी प्रो. रेवा प्रसाद द्विवेदी जी को पद से हटाने के लिए श्री बटुक प्रसाद शर्मा ने इसी तर्क का सहारा लिया था।

प्रो. शिव जी उपाध्याय को भी इसी हत्यारे तर्क से किनारे लगाने का प्रयास किया गया। प्रो. विद्या निवास मिश्र जी को श्री काशी विद्वत् परिषद् का अध्यक्ष बनाने की बात उठी थी तो उन्हें भी इसी ब्रह्मघातक हथियार से काटने की कोशिश की गई थी। काशी विद्वत् परिषद् में दो समूह हैं। ये दोनों समूह परस्पर टकराते रहते हैं। श्री बटुक प्रसाद शर्मा विद्या, व्यक्तित्व और राष्ट्रभक्ति से रहित आत्मकेन्द्रित व्यक्ति हैं। वे माधवाश्रम जी की कृपा से हिन्दू समाज को पतित, चाण्डाल सिद्ध करने के लिए कमलाकान्त जैसे शिखण्डियों का सहारा लेते हैं। **काशी के दस-बीस मीमांसकों-महन्तों-धर्मशास्त्रीजनों के कहने से सारा हिन्दू समाज पतित और चाण्डाल कैसे हो जायेगा?**

संदेश

हिन्दू समाज में अपरिमित क्षमता है। हमें **अगस्त्य ऋषि** की तरह समुद्र को पी जाने की क्षमता रखनी चाहिए। हमें **श्री राम** की तरह बाणों से समुद्र लहरों पर पत्थरों को सुसज्जित करने की कला को जानना चाहिए। हमें **श्री महावीर हनुमान् जी** की तरह समुद्र को फाँद जाने की क्षमता रखनी चाहिए। हमें **वीर सावरकर** की तरह समुद्र को तैर जाने का पराक्रम रखना चाहिए। हमें **प्रातः स्मरणीय विवेकानन्द** की तरह समुद्र पार में जाकर देवध्वज को लहराने का पवित्र शौर्य रखना चाहिए।

क्या समुद्र मन्थन करने वाले देवता और असुर चाण्डाल और महापतित हैं? नहीं। चाण्डाल और महापतित जैसी गालियों को प्याली में भर कर पी लेने वाला नीलकण्ठ होता है। हिन्दू समाज को अपने ज्ञानरूपी सुमेरु पर्वत को मथानी बनाकर विश्व समुद्र का मन्थन कर डालना चाहिए। इस मन्थन से निकलने वाले अमृत को सर्वत्र बाँटना चाहिए। तभी **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** की भावना चरितार्थ होगी।

''हिन्दवः सोदराः सर्वे
न हिन्दुः पतितो भवेत्''

सभी हिन्दू सहोदर भाई हैं। हिन्दू कभी पतित नहीं होता।



स्त्री और शूद्र शिक्षा

धर्मशुद्धि के पृष्ठ ८ पर हरिप्रसाद द्विवेदी ने संपादकीय में लिखा है- "आचार्यों ने स्त्री संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया है। आज लोग कन्याओं को समय पर विवाह न करके शहरों में एकाकी छोड़ दे रहे हैं। वे स्वतन्त्र रूप से पढ़ रही हैं। बहुत सी कन्यायें अपने गुरुओं के पास पी.एच.डी. (शुद्ध होगा पीएच.डी.) भी करने लगी हैं। 'दुर्जया हि विषया विदुषाऽपि' अर्थात् विद्वानों के लिए भी विषयत्याग करना कठिन है। पत्नी ढ़लान पर है तो गुरुओं की दृष्टि उन शिष्याओं पर जायेगी ही जो पी.एच.डी. (अशुद्ध) कर रही हैं। परिणाम स्वरूप आसानी से सम्बन्ध कायम हो जाता है और पत्नी के रहते हुए भी शिष्या को ही पत्नी बना लिया जाता है। विचार करने योग्य है कि यह सब विवेक के अभाव में हो रहा है। अधिक शिक्षा का व्यामोह छोड़ कर कन्याओं का समय पर ही विवाह कर देना चाहिए।"

इस हत्यारे वक्तव्य ने शिष्या की पुत्री तुल्यता और गुरु की पिता तुल्यता की हत्या कर दी है। स्त्री संरक्षण का विरोध विश्व की किसी भी सभ्यता में नहीं है; पर संरक्षण के नाम पर उसे घर में कैद कर दिया जाए, अशिक्षित बनाकर रखा जाए, केवल भोग्या बनाकर बच्चा पैदा करने का मशीन बना दिया जाए? यह आज संभव नहीं है। ऋषि परंपरा ने विचारों की स्वतंत्रता की हत्या नहीं की। ऐसा कोई गुरुकुल नहीं था जहाँ लड़कियाँ न पढ़ती हों? कण्व आश्रम में शकुन्तला और प्रियम्वदा थीं। शकुन्तला का गान्धर्व विवाह हो गया पर प्रियम्वदा को किसी गुरु ने रखैल नहीं बना लिया। अर्जुन ने उत्तरा को पुत्रवधू बना कर विराट् के संदेह का निराकरण कर डाला था। हरिप्रसाद का शरीर और दिमाग विकृत हो गया है तभी वे ऐसा सोचते हैं। भारत के विश्वविद्यालयों में आज पन्द्रह करोड़ से अधिक लड़कियाँ पढ़ रही हैं। महिला विश्वविद्यालय और महिला विद्यालय खुल चुके हैं। केवल काशी और प्रयाग में ही पाँच लाख से अधिक लड़कियाँ अध्ययन कर रही हैं। इनमें शोध करने वाली छात्राओं की संख्या प्रतिवर्ष हजारों में है। ऐसे में केवल इन दो महानगरों का उदाहरण लिया जाए

तो यह स्पष्ट है कि अवैध सम्बन्ध, बलात्कार और यौन शोषण की घटनायें दस-बीस वर्ष के अन्तर पर कभी एक दो बार कहीं घटती नजर आती हैं। इन घटनाओं के पीछे भी प्रायशः अध्यापक राजनीति और उनका वर्चस्व ही मुख्य कारण है। यदि ऐसी घटनायें घटती हैं तो कठोर दण्ड भी मिलता है।

समय पर विवाह का क्या मतलब है? कमलाकान्त कहते हैं- अष्टवर्षीय कन्या में सद्योवधू बनने की इच्छा जागृत होती है। इनकी पत्नी कब ब्याह कर आयी? इनके घर की बेटियाँ कब ब्याही जा रही हैं? वह व्यक्ति शास्त्रज्ञ हो ही नहीं सकता जिसे यह न विदित हो कि राजाज्ञा (वर्तमान स्मृति) प्राचीन स्मृतियों का निषेध करने में सक्षम होती है। आज बालिग (१८ वर्ष) होने से पूर्व जो कन्या-विवाह करेगा वह कारागार में निरुद्ध कर दिया जायेगा। यह युग भारतीय संविधान का युग है। यदि कोई भारतीय संविधान नहीं मानता है तो वह श्रेष्ठ है ऐसा नहीं कहा जा सकता। भारतीय संविधान को आतंकवादी नहीं मानते। भारतीय संविधान को अराजकतत्त्व नहीं मानते। उनके लिए दण्ड की व्यवस्था है। कमलाकान्त कहते हैं- 'धर्मशास्त्रीय पक्ष से यदि धर्मनिरपेक्ष ढाँचे पर कुठारपात होता है तो होता रहे।' पृष्ठ २६१। इनका यह प्रलाप नहीं तो क्या है? धर्मनिरपेक्षता का मूल शब्द है 'सेक्यूलरिज्म' और यह शब्द ईसाईयत से सम्बन्धित है। धर्मशास्त्र हिन्दूधर्म के संविधान हैं। जब हिन्दू देश ही नहीं है तो हिन्दू धर्मशास्त्र कहाँ से लागू होगा। ऐसे में धर्मशास्त्र में यह ताकत ही नहीं है कि वह धर्म-निरपेक्षता को स्थानान्तरित कर दे। भाषण दिया जा सकता है पर उसे कानून रूप में लागू कराना आज की परिस्थिति में असंभव है। कमलाकान्त को देश; काल, परिस्थिति, युग और वर्तमान संकट का ज्ञान ही नहीं है। आज विश्व में हिन्दू कैसे पिसा जा रहा है यह बंगलादेश, पाकिस्तान, फिजी और नेपाल दैशों को देखकर जाना जा सकता है।

विश्व के सभी धर्मों में इस्लाम कट्टर मजहब है। विश्व में इसके ५६ राष्ट्र हैं। इन राष्ट्रों में भी आज महिलाओं को आजादी प्राप्त है। महिलायें विगत दो सौ वर्षों से शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। उनकी शिक्षा को रोकने की बात करना प्रलाप नहीं तो क्या है? 'वेदों की शिक्षा स्त्री और शूद्र को नहीं देनी चाहिए' ऐसा निषेध वचन यदि प्राप्त है तो उस वचन का भी निषेध कानून द्वारा आज हो चुका है। कमलाकान्त को चाहिए कि वे वेद विभागों को बन्द करा दें या वेद पढ़ने

वाले शूद्र और महिलाओं को अपनी शक्ति और आन्दोलनों से रोकें। धर्मशुद्धि ग्रन्थ में उन्होंने सर्वत्र लिखा है- 'ऐसा करना चाहिए।' यह 'चाहिए' वे स्वयं क्यों नहीं अपने मित्रों के साथ आरम्भ कर रहे हैं। 'पिता की सम्पत्ति में कन्या का समान अधिकार है' सितम्बर २००५ में ऐसा कानून बना कर काँग्रेस ने 'मिताक्षरा' की व्यवस्था को धो दिया। क्या कमलाकान्त इसे रोकने हेतु आगे आये? कमलाकान्त को अपनी मीमांसा वाली विचारधारा को फैलाने हेतु पार्टी का गठन करना चाहिए; जैसे पूज्य करपात्रस्वामी ने किया था। पंडित जी बन्द कमरे में शीशे के सामने खड़ा होकर आप समाज को ललकार रहे हैं, जरा बाहर आइये और दो-दो चार होइये। आज वेदों की पढ़ाई आर्य समाज की पाठशालाओं, महाविद्यालयों में हो रही है। प्रजापति विश्वविद्यालय वाले भी यही कर रहे हैं। विश्व हिन्दू परिषद् और विश्वविद्यालयों के वेद विभागों में भी जाति और लिङ्ग के आधार पर पढ़ाई की रोक नहीं है। आज ऋचा, वाणी, सरस्वती, वाक्, सुदक्षिणा, सन्ध्या, हव्या, क्रव्या, शान्ति, गायत्री आदि वेदों को पढ़ रही हैं। ऋचा ने कहा- मुझे वेद पढ़ने से कौन रोकेगा? सरस्वती ने कहा- मूढ़ हैं मुझे पढ़ने से रोकने वाले। मेरे ही कारण ये ज्ञानी बने हैं। ऋचा के कारण ही ये ऋषि बने हैं और स्त्री को वेद पढ़ने से रोकेंगे? गायत्री को गायत्री से कैसे रोकेगा कोई?

वेद भी शब्दों के समूह हैं। वेद भी पुस्तक आकृति में छपे हैं। इन्हें घर में रखकर जो चाहे पढ़ ले। उन्हें कैसे रोका जा सकता है? जहाँ तक यज्ञ करने का प्रश्न है आज यज्ञ हो कहाँ रहा है? मानस यज्ञ, सप्तशती यज्ञ, भागवत यज्ञ ही तो हो रहे हैं? वेदों में प्रतिपादित यज्ञ कहाँ हो रहे हैं? कमलाकान्त स्वयं भी अग्निहोत्र नहीं करते। इनके घर में यज्ञ की अग्नि एक दिन भी लपकती नहीं दिखती। प्याज तो ये भी दान में लेते हैं। हाँ, खाते नहीं बेच देते हैं। ऐसा करने से धर्म भी सुरक्षित रहता है और धन भी आता है। स्त्री और शूद्रों को वेद नहीं पढ़ना चाहिए पर मीमांसकों को शायरी करनी चाहिए?

रात को मय खूब सी पी सुबह को तौबा कर ली।
रिन्द के रिन्द रहे हाथ से जन्नत न गई।। पृष्ठ २९।।

धन्य हैं आप और आपकी धर्मशुद्धि। यही है वेदानुगामिता?



शूद्र अवमानना क्यों?

धर्मशुद्धि ग्रन्थ में कमलाकान्त ने शूद्र जाति के लिए घृणित और उपहास जनक मजाक लिखे हैं। शूद्रों को महासमुद्र कहा है। सेना में भर्ती होने का मजाक उड़ाया है। पुआ खाने वाला विप्र दूसरों का मजाक कैसे उड़ा सकता है? शूद्र विराट् ब्रह्म के पैरों से पैदा हुआ है। अतः वह उपेक्षणीय है। यह कमलाकान्त का सिद्धान्त है। उनके जैसे मीमांसकों और धर्मशास्त्रज्ञों का भी यही सिद्धान्त है। उसी विराट् ब्रह्म के पैरों से पृथ्वी की भी उत्पत्ति हुई है- 'नाभ्या आसीदन्तरीक्ष...' ऋचा में 'पद्भ्यां भूमिः' की उत्पत्ति कही गयी है। पृथ्वी भी शूद्रा है। वह भी विराट् के पैरों से उत्पन्न है (इसलिए शूद्र है)। अथर्ववेद का ऋषि कहता है- 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'। भूमि मेरी माँ है। मैं उसका पुत्र हूँ। **यानी पृथ्वी शूद्रा और पृथ्वी पुत्र ऋषिगण शूद्र। पृथ्वी पर पलने; पढ़ने के कारण सारा विश्व शूद्र।** इसीलिए कहा गया 'जन्मना जायते शूद्रः।' सत्यवती मल्लाहिन थीं। उनके पुत्र वादरायण व्यास शूद्र हैं कमलाकान्त के अनुसार। कमलाकान्त मनु के अनुसार हिन्दू समाज को चलाना चाहते हैं। इस स्मृति को कलि में वर्जित कर दिया गया है। 'कलौ पाराशरीस्मृतिः' की अवधारणा को ये नहीं मानते। 'मनु सूर्य के पुत्र हैं" कमलाकान्त स्वयं लिखते हैं; पर सूर्य पुत्रों कर्ण, यमराज, मनु और पुत्री यमुना की सामाजिकी स्थिति को वे नहीं देखते।

अगर मनु को हिन्दू समाज का आदि पुरुष मान लिया जाए तो सारी हिन्दू प्रजाति क्षत्रिय होगी। अगर कश्यप से उत्पत्ति मानी जाए तो सारी हिन्दू प्रजाति ब्राह्मण होगी। यदि विराट् से चातुर्वर्ण्य की उत्पत्ति मानी जाए तो भी सभी हिन्दू सहोदर होंगे। समाजद्रोही मीमांसकों से आचारवान् शूद्र पूज्य हैं। कमलाकान्त लघुशंका करते समय धोती का पृष्ठबन्ध (पछुआ) नहीं खोलते। तत्पश्चात् हाथ भी नहीं धोते। सीधे पढ़ाने हेतु आसन पर बैठ जाते हैं। वहाँ छात्र तो होते नहीं। ऐसे में तन्त्रवार्तिक खोल कर जिह्वा से उँगली स्पर्श कर पन्ने पलटते हैं। कौन श्रेष्ठ है? समाज इसका स्वयं निर्णय कर ले। स्मृति कहतो है-

अमुक्त्वा पश्चिमां कक्षां मूत्रयेद् यो द्विजाधमः।

रेतोधाः पितरस्तस्य तन्मूत्रक्लेशपूरिताः।। शिष्टस्मृतिः।।

अर्थात् लाङ्ग को खोले बिना जो ब्राह्मण पेशाब करता है वह अधम (पतित) है। उसके पितर उस पेशाब से पीड़ित होते हैं। ऐसे में तो कमलाकान्त जी पतित और चाण्डाल ही हैं।

मूत्रं कृत्वा विना शौचं कच्छां बध्वा द्विजाधमः।
कच्छान्वितो मूत्रयित्वा स मूढो नरकं व्रजेत्।। याज्ञ.।।

ब्राह्मण यदि शास्त्र का विषय नहीं है तो केवल योनि से उत्पन्नता के कारण उसकी श्रेष्ठता में क्या प्रमाण होगा? माता की शुचिता, पिता की पुष्टि ही प्रमाण होगी या डी.एन.ए. टेस्ट प्रमाण होगा।

आज शूद्र निरंतर श्रेष्ठता के सोपान पर चढ़ा है। गिरावट तो त्रिवर्ण में आई है। ब्राह्मणों में विशेष। दक्षिण का ब्राह्मण कत्लखाना चलाता है। जूते का अधिकांश व्यवसाय करता है। देश में नब्बे प्रतिशत ब्राह्मणों का यज्ञोपवीत समय से नहीं हो रहा है। साठ प्रतिशत ब्राह्मण यज्ञोपवीत नहीं पहनता। ९५ प्रतिशत ब्राह्मण पैंट-शर्ट पहनता है। खड़ा पेशाब करता है। तिलक नहीं लगाता। शिखा नहीं रखता। बड़े बड़े धर्माचार्यों के पुत्र पुत्रियों ने नमक तेल की दुकानों, कोयले की दुकानों, किताब की दुकानों, दूध विक्रय की दुकानों को खोल रखा है।

कमलाकान्त स्वयं अपने घर से धर्मशुद्धि और अन्य पुस्तकों को बेच रहे हैं। कमीशन ले रहे हैं। बिना पढ़ाये विश्वविद्यालय से वेतन ले रहे हैं। एक भी शिष्य आज तक नहीं निकाला है आपने। पतित, चाण्डाल, बधिक कौन है? इसका निर्णय इतिहास करेगा या फिर समाज करेगा।

'पथि शूद्रवदाचरेत्' यह विधि वाक्य है। ब्राह्मण यात्रा में शूद्र की तरह आचरण करे। यानी ब्राह्मण रास्ते में शूद्र हो जायेगा और घर जाकर स्नान करके पुनः ब्राह्मण। इससे सिद्ध होता है शूद्रावस्था होती है। मूत्र, मल, रक्त से सना ब्राह्मण शूद्र होता है तत्पश्चात् स्नानादि से पुनः ब्राह्मण। मार काट में लंगा ब्राह्मण क्षत्रिय होता है तत्पश्चात् पुनः ब्राह्मण। किताब बेचता, बिना पढ़ाये वेतन लेता ब्राह्मण वैश्य और शूद्र होता है प्रायश्चित के बाद पुनः ब्राह्मण। उसी तरह से श्रेष्ठ आचरण से युक्त शूद्र राष्ट्ररत्न, भूमिपुत्र, सत्यवती पुत्र होता है।

ब्राह्मणों में भी जातियाँ हैं

काश्मीरी ब्राह्मण (कौल, सण्ड, भट्ट), पंजाबी ब्राह्मण (शर्मा, सारस्वत), मैथिल ब्राह्मण (झा), उड़िया ब्राह्मण (महापात्र, मोहन्ती, सत्पथी आदि), सरयूपारिण ब्राह्मण (इनमें भी तीन, तेरह, पंक्तिपावन), कान्यकुब्ज ब्राह्मण (वाजपेयी, त्रिवेदी, अवस्थी आदि), केरल ब्राह्मण, आन्ध्रब्राह्मण, तमिलब्राह्मण, जुझौतिया ब्राह्मण, असमिया ब्राह्मण, नेपाली ब्राह्मण, पहाड़ी जोशी, नौटियाल ब्राह्मण आदि केवल ब्राह्मणों में ही हजारों जातियाँ हैं। इनके खान-पान, रहन-सहन, संस्कृति-सभ्यता-देशाचार में अन्तर है। ये एक दूसरे में विवाह नहीं करते। कोई शाकाहारी है तो कोई मांसाहारी। सुरापायी और सोमपायी भी हैं इनमें। कमलाकान्त कहते हैं केवल शूद्रों में जातियाँ होती हैं ब्राह्मणों में नहीं। यह अज्ञानता है या झूठ? यदि अज्ञानता है तो प्रलाप है यदि झूठ है तो दण्डनीय है।

उत्तर भारत में महापात्र नीच और अस्पृश्य माना जाता है उड़ीसा में वह श्रेष्ठ है। पहले शाकद्वीपीय विप्रों को हेय माना जाता था अब वे पूज्य हैं। इनमें धीरे धीरे विवाहादि भी शुरु हो गया है। भूमिहार अपने को प्रवृत्त ब्राह्मण मानते हैं। वे ब्राह्मण आचार करते हैं। संस्कृत पढ़ते हैं। इनकी अनेक संस्कृत पाठशालायें हैं। क्षत्रियों में विवाहादि नही करते, ब्राह्मणों में करते हैं। मांसभक्षी श्रोत्रियों की जातियाँ भी अलग हैं। न केवल ब्राह्मणों में अनेक जातियाँ हैं, बल्कि शास्त्रीय प्रवृत्तियाँ भी उनमें अनेक हैं। वैष्णव प्रवृत्ति, शैव प्रवृत्ति, शाक्तप्रवृत्ति ये मुख्य हैं। वैष्णव शाकाहारी और करुणापूर्ण है। शैव भांग, धत्तूरक, गाँजा लेता है। शाक्त रात्रिपूजा (तुरीय संध्या) में मद्य लेता है। अघोर, गोरक्ष, भैरव, कापालिक ब्राह्मणों की प्रवृत्तियाँ अलग हैं। ये तामसी प्रवृत्ति में हैं और नहीं भी हैं। महाकवि कालिदास ने शाकुन्तलम् में धीवर और श्रोत्रिय ब्राह्मणों की तुलना की है।

शूद्र उत्पीड़न की प्रतिक्रिया

तमिलनाडु में शूद्र उत्पीड़न की भयानक प्रतिक्रिया हुई। कमलाकान्त द्रविड़ों को शूद्र कहते हैं; पर तमिलनाडु के शूद्र बन्धुओं ने वहाँ के ब्राह्मणों को आन्दोलन चला कर आपदस्थ कर दिया। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में

तमिल ब्राह्मणों का पलायन उसी आन्दोलन की प्रतिक्रिया का फल है। धार्मिक कट्टरता दक्षिण भारत में उत्तर की अपेक्षा अधिक थी। शारीरिक शुद्धि, छुआछूत के कारण वहाँ का शूद्र अत्यधिक पीड़ित था। उस उत्पीड़न के विरुद्ध वहाँ समूहबद्ध आन्दोलन चला। ब्राह्मणों को सत्ता से च्युत किया गया। नगरों, कस्बों, गाँवों में ब्राह्मणों की संपत्ति पर कब्जा किया गया। प्रदेश में नौकरी से ब्राह्मण बेदखल किये गये। आत्मरक्षा के लिए तमिल ब्राह्मणों ने पलायन किया। कहीं क्लर्क बन कर, कहीं टाइपिस्ट बन कर तो कहीं प्यून बनकर उन्हें अपनी रक्षा करनी पड़ी। भोजन के लाले पड़ने लगे तो किसी भी काम को करने के लिए विवश होना पड़ा। धर्मशुद्धि नहीं बची रह सकी उनकी। मठों और आश्रमों का सामूहिक बहिष्कार हुआ। प्रायश: चालीस, पचास वर्षों बाद तमिल ब्राह्मणों की आर्थिक स्थिति में सुधार आया; क्योंकि उन सभी के सभी ब्राह्मणों ने अन्य प्रान्तों में, विदेशों में जाकर अंग्रेजी के माध्यम से उपलब्ध जीविका को अपनाया। मनुस्मृति प्रोक्त जीविका अग्नि वैश्वानर को समर्पित कर तमिल ब्राह्मण मैकाले शिक्षा और अंग्रेजी दीक्षा के माध्यम से विश्व धरातल पर टिक सका। उधर पीड़ित शूद्र, अपमानित शूद्र, द्विजों द्वारा नीच कह कर तिरस्कृत किया गया शूद्र मुसलमान और ईसाई बनता रहा। मीनाक्षीपुरम् की घटना घटती रही। पूज्य स्वामी जयेन्द्र सरस्वती जी ने इन शूद्र बन्धुओं को हृदय से लगाया। उनमें परमात्मा का दर्शन किया। उनके लिए चिकित्सा, वस्त्र, शिक्षा के लिए चिंता की। धीरे धीरे स्थिति में बदलाव आया।

श्री काशी विद्वत् परिषद् के धर्मादेश (फतवा) के कारण कश्मीर के भट्ट और कौल ब्राह्मणों को जिन्हें जबरदस्ती मुसलमान बना लिया गया था- जो हिन्दू धर्म में लौटना चाहे रहे थे- वापस परावर्तित कर हिन्दू धर्म में नहीं लौटाया जा सका। माननीय राजा हरि सिंह जी चाह कर भी कुछ कर नहीं सके। महामहोपाध्याय शिव कुमार शास्त्री के आदेश के कारण कौल व भट्ट ब्राह्मण स्वधर्म में नहीं आ सके। परिणाम क्या हुआ उन सभी मुसलमान ब्राह्मणों ने सुसंगठित होकर घाटी में बसने वाले तीन लाख काश्मीरी पंडितों को मार बाहर किया। ६८ हजार लोगों को आतंकवाद द्वारा कत्ल कर डाला और इधर क्या हुआ? पंडित शिवकुमार शास्त्री की बेटी के परिवार में न केवल अन्तर्जातीय विवाह हुआ बल्कि

अन्तर्धर्मीय विवाह भी हुआ। हिन्दू समाज ने इन्हें उपेक्षित नहीं किया। उस परिवार की प्रतिष्ठा आज भी उसी तरह है। म.म. शिवकुमार शास्त्री ने यदि विश्व परिदृश्य को विचार कर निर्णय लिया होता तो कश्मीर में आज केवल हिन्दू ही रहते। कश्मीर आज शत्रु राष्ट्र द्वारा व्यापादित है। तब ऐसा नहीं होता। यह जो अपमानार्थक शूद्र शब्द है हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू अस्तित्व के लिए विभाजक बन गया है; पर कोई तेजस्वी, तपस्वी, श्रेष्ठ ब्राह्मण इसे क्यों नहीं समझ पा रहा है? इस अपमानार्थक शूद्र शब्द को आदरार्थक कर जिस दिन हिन्दू समाज समरस हो जायेगा उस दिन उसके अस्तित्व को बचाने की आधारशिला रख दी जायेगी। वर्णाश्रम और जाति का विरोध कौन कर रहा है? पर शूद्र को हीन कहने की प्रवृत्ति को दबाना ही पड़ेगा। यदि शूद्र को हिन्दू मुख्य धारा में नहीं लिया गया तो वह दिन दूर नहीं जब संपूर्ण देश में ब्राह्मणों की वही दुर्गति होगी जो तमिलनाडु और कश्मीर में हुयी।

विश्व हिन्दू परिषद् और संघ की भूमिका

संघ शाखा लगाने का काम करता है। स्पष्ट है कि वैश्विक और राष्ट्रीय परिस्थितियों में हिन्दुओं की एकजुटता हेतु चिंतन करना, राष्ट्र रक्षा की चिंता करना और हिन्दू धर्म को बचाने हेतु यत्न करना संघ का उद्देश्य है। इसकी पूर्ति हेतु स्वयं सेवक आगे आता है। संघ का मूल कार्य है राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण। संघ के स्वयंसेवकों ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सघन कार्य खड़ा कर हिन्दुत्व के अनुकूल वातावरण बनाने का काम किया है। इन अनेक आयामों और संगठनों को संघ परिवार कहते हैं। इस दृष्टि से विश्व हिन्दू परिषद् संघ परिवार का अंग है; पर उसका काम है धार्मिक एवं सांस्कृतिक उत्पीड़न को रोकना। हिन्दू समाज पर हो रहे प्रहारों का जवाब देना एवं तदनुरूप वैसी व्यवस्था खड़ी करना जिससे न्यूनतम प्रतिरोध खड़ा हो सके। स्पष्ट है कि विश्व हिन्दू परिषद् हिन्दुओं की चिंता करती है, ब्राह्मणों या त्रैवर्णिकों की नहीं। ये भी हिन्दू हैं। अतः स्वाभाविक रूप से इनकी भी चिंता होती रहती है। सिख, जैन और भारतीय बौध भी हमारे अभिन्न अंग हैं। धर्मान्तरित हिन्दू को पुनः मूल (स्व) धर्म में

लौटाने का काम वि.हि.प. का परावर्तन विभाग देखता है। उन्नीस सौ पच्चानबे से लेकर दो हजार पाँच के भीतर दस वर्षों में विहिप ने प्रयास पूर्वक धर्मान्तरित साठ सत्तर प्रतिशत लोगों को औसतन परावर्तित करा लिया है। इससे भी बड़ा काम किया उन क्षेत्रों में समस्या के अनुरूप काम खड़ा करना जिन समस्याओं के कारण धर्मान्तरण हो रहा है।

धर्मान्तरण होने का सबसे बड़ा कारण है सामाजिक घृणा, अस्पृश्यता, अपशब्द, नीच और हेय दृष्टि से देखने का भाव। ईसाई मिशनरी चाहती है हिन्दुओं में छुआछूत रहे; घृणा रहे। इससे उसका काम आसान होता है। वह तीस पैंतीस करोड़ शूद्रों का धर्मान्तरण चाहती है। ऐसे में 'धर्मशुद्धि' ईसाईयत का हस्तक बनेगी। साथ में यह भी संभव है कि इस प्रच्छन्न कार्य को करने हेतु कमलाकान्त को भारी रकम की प्राप्ति हो जाए। आज अनेक लोगों को हिन्दू समाज तोड़ने में सहयोग करने हेतु विदेशी षड्यंत्रकारी धन देते हैं। वाराणसी और इलाहाबाद में बतौर नौकरी ब्राह्मण आदि त्रैवर्णिक धर्मान्तरण कराने का काम कराते हैं। वे स्वयं धर्मान्तरित नहीं होते। अपने तो सर्विस कर वेतन प्राप्त करते हैं और अन्य जनों को उकसाते हैं; फुसलाते हैं।

विगत दो हजार वर्षों से ईसाई मिशनरियाँ विश्व में धर्मान्तरण का अभियान चला रही हैं। मुस्लिम संगठन और उनका राष्ट्र संख्या बल, संगठित हो, बल, मार काट और आतंकवाद से विस्तारवाद को आयाम दे रहे हैं। सीधी सरल हिन्दू प्रजाति के पास संगठित और सुव्यवस्थित होने के लिए अवसर नहीं है। शंकराचार्य और संत शूद्रों में जाते नहीं। फिर कौन बचायेगा हिन्दू समाज को? इसकी चिन्ता किसको है? इसकी चिन्ता विहिप को है। रघुनाथ मंदिर, वैष्णव देवी, अक्षरधाम, कारगिल या श्रीरामजन्मभूमि पर आक्रमण हो तो सरकार पर दबाव बनाने का काम, भारत बन्द का आह्वान विहिप करती है। जयेन्द्र सरस्वती कारागार में बन्द होते हैं तो आन्दोलन चलाने का काम विहिप करती है। पाकिस्तान और लश्कर- ए-तय्यब्बा की धमकी के बावजूद अमरनाथ यात्रा पर पाँच लाख की संख्या में पहुँचने का काम बजरंग दल के नौजवान करते हैं।

बचेगा तो हिन्दू समाज अथवा कोई नहीं

कमलाकान्त की धर्मशुद्धि कहती है कि- एक नैष्ठिक ब्राह्मण बचा रहेगा तो सनातन धर्म बचा रहेगा। यह मुंगेरी लाल का हसीन सपना है, ख्याली पुलाव है। धर्मशुद्धि कहती है- "जिस क्षण शास्त्रीय मान्यता का प्रत्येक व्यक्ति में अभाव होगा वही क्षण प्रलय का क्षण होगा। एक भी शास्त्रीय मर्यादा से सम्पन्न व्यक्ति यदि भूलोक में रहेगा तो निश्चित ही पृथ्वी सारे पशुओं का भार वहन करती रहेगी। मैं सबकी नहीं कहता किन्तु अपने विचार में यही बात बार बार आ रही है कि यदि एक आचार सम्पन्न कर्मनिष्ठ श्रोत्रिय ब्राह्मण की सुरक्षा का प्रश्न आये तो उसमें सारे संसार को अपनी बलि देनी पड़े तो दे देनी चाहिए।"

कमलाकान्त के इस वक्तव्य में निम्नलिखित दोष हैं-

क. शास्त्रीय मान्यता केवल मीमांसा के सिद्धान्त नहीं हैं।

ख. आज धर्म और आचार हेतु अद्वैत वेदान्त, सांख्य और कर्मकाण्ड मुख्य आधार स्तम्भ बने हुए हैं।

ग. मीमांसा वैसे भी चतुर्दशविद्या में परिगणित है। यह षट्शास्त्र में नहीं है।

घ. शास्त्रीय मान्यता और उसके अभाव का आपका दृष्टिकोण अत्यन्त संकुचित है। आपके दृष्टिकोण को तन्त्रवार्तिक और पशुयाग मात्र संचालित कर रहे हैं।

ङ. प्रलय का क्षण पारिभाषिक है। कौन सा प्रलय? दैनन्दिन, युग या महाप्रलय?

च. प्रलय 'काल सापेक्ष' और 'युगपरिवर्तन सापेक्ष' है, शास्त्र या मीमांसा सापेक्ष नहीं।

छ. इस तरह का भय मुसलमान और ईसाई भी दिखाता है। 'अल्ला का कहर' या 'जस्टिस ऑफ गॉड' कहता है।

ज. शास्त्रीथ मर्यादा से सम्पन्न एक व्यक्ति हो ही नहीं सकता। एक व्यक्ति से संतति शृङ्खला नहीं चलेगी और उस शास्त्रीय मर्यादा की अन्त्येष्टि हो

जायेगी। जब तक समूह और समाज नहीं बचेगा व्यक्ति के बचने का प्रश्न ही नहीं है। यह कपोल कल्पना और अस्वभाविक, अप्राकृतिक तर्कणा मात्र है।

झ. कर्मनिष्ठ श्रोत्रिय ब्राह्मण को बचाना महत्त्वपूर्ण है; पर सृष्टि का सर्वनाश करके उसे बचाने की परिकल्पना धार्मिक जड़वाद की पराकाष्ठा है।

ञ. आपने धर्मनिष्ठा की बात कही है। अधिकतर लोग गीता के कर्मवाद को मानते हैं मीमांसा के कर्मवाद को नहीं। **मामनुस्मर युध्य च, कर्मण्येवाधिकारस्ते, योगः कर्मसु कौशलम्** आदि उक्तियाँ यागपरक या 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' वाली नहीं है।

ट. कमलाकान्त को ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म (रीलिजन या मजहब) की रणनीति और शक्ति का तनिक भी आभास नहीं है। इन्हें विश्व इतिहास, क्रूसेड तथा जेहाद के अभियानों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। हिन्दू समाज कैसे इनका ग्रास बन रहा है यह जानना चाहिए।

सेठ चिन्तन

धर्मशुद्धि में धर्म चिन्तन, शास्त्र चिन्तन या वेद चिन्तन नहीं है। इसमें सेठ चिन्तन है। पुरोवाक् से लेखक की मानसिकता का पता चलता है। पृष्ठ २१ में कमलाकान्त की चिन्ता का आवरण हटा हुआ है। वे धनिक वर्ग से नाराज हैं; क्योंकि धनिक वर्ग व्यासों तथा कथाकारों को धन देता है मीमांसकों को नहीं। उनकी समग्र कार्य प्रणाली धन पर टिकी हुयी है। आखिर उन्हें कथाकारों, व्यासों, सन्तों, महन्तों, विदेशगामी डाक्टर-इंजीनियर-वैज्ञानिक-धार्मिक-पर्यटक-पुजारी-शोधकर्मी-राजनीतिज्ञ जनों एवं समूहों को पतित-चाण्डाल-अधम-निकृष्ट-त्रिजात घोषित करना है।

धनिक वर्ग पागल है; क्योंकि वह श्रेष्ठ वक्ता, संत और सम्प्रदायों को धन देता है। आर्य मर्यादा पीठ की स्थापना ही धन उगाहने की योजना पर

आश्रित है। कथा आयोजनों पर सेठ करोड़ों रुपये निरर्थक क्यों बरबाद कर रहे हैं? उन्हें मीमांसा विभागाध्यक्ष कमलाकान्त को धन देना चाहिए; जिससे वे अपनी हत्यारी पशुयाग योजना को मूर्तरूप दे सकें। सौ करोड़ हिन्दुओं को नीच-पतित-चाण्डाल-अधम-कुकर्मी घोषित कर सकें। आखिर सोलह-अट्ठारह हजार की प्राप्ति से इनका सुरसा उदर कैसे भरेगा? कक्षायें लेनी नहीं है; क्योंकि विद्यार्थी हैं ही नहीं। फिर तो केवल घूम घूम कर महामण्डलेश्वरों एवं सेठों को ही पटाना मात्र जीवन लक्ष्य है। सद्विद्या की रक्षा का अधिभार कमलाकान्त को सेठ दें। पृष्ठ २२। सेठों को भी सोचना चाहिए कि आचार्य समाज की गन्दगी को धोने के लिए निकला है। रजक और आचार्य एक जैसा होता है। दोनों गंदगी दूर करते हैं। एक वस्त्र की दूसरा समाज की। स्वयं न तो रजक (धोबी) स्वच्छ रहता है न आप जैसा आचार्य। स्वच्छ रहें भी कैसे? निरंतर गंदगी साफ करते रहने वाला अपनी स्वच्छता हेतु समय कब और कैसे निकाले? पिनाकिन जी जैसे गाँठ के पूरे आँख के प्रज्ञाचक्षु समाज में हैं तो कमलाकान्त को धन कैसे नहीं मिलेगा? सेठ प्रशंसा से पिघलता है या गाली से डरता है। दोनों काम करना कमलाकान्त जानते हैं। यही सेठ चिन्तन है। धन देने वाले सेठ की जै जै या जयति-जयति और धन न देने वाले सेठ की बीबी की ऐसी की तैसी। पृष्ठ २५, पृष्ठ ३२ आदि।

उत्तर-प्रत्युत्तर/प्रश्न-प्रतिप्रश्न

- सन्ध्या, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास और ज्योतिष्टोम इतने कर्म त्रैवर्णिक (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के लिए नित्य कर्म हैं। पृष्ठ ८.

\+ आपके घर में अग्निहोत्र का धुआँ कभी नहीं निकलता।

- प्रतिदिन त्रिकाल सन्ध्या करनी चाहिए। पृष्ठ ८

\+ पर आप कभी करते नहीं।

- हमारे उत्तर भारत में तो अब आचार पद्धति ही नहीं रह गयी है। सन्ध्या तक का भी द्विजबन्धुओं में लोप हो गया है। पृष्ठ १५

\+ तब तो आप अनाचारी हैं। वैसे भी आप बिना पढ़ाये वेतन लेते हैं। सन्ध्या भी आप नहीं करते। उस समय तो सेठ पटाने निकले होते हैं।

- द्रविड़ शूद्र हैं। पृष्ठ ४९

+ उत्तर भारत में आचार नहीं है और द्रविड़ शूद्र हैं तो फिर ब्राह्मण कौन बचा? आप मनोरोगी हो चुके हैं। अपनी चिकित्सा करायें।

- आज मैं काशी के ब्राह्मणों के घर के दरवाजे पर प्याज, लहसुन का छिलका अक्सर देखता हूँ। पृष्ठ १५

+ आपने जमादार (मेहतर) की नौकरी कब से शुरु कर दी?

- शूद्र महासागर हैं। पृष्ठ १८

+ आप जैसी नदियों का जनक है शूद्र। वाष्पन नहीं तो वृष्टि नहीं। वृष्टि नहीं तो नदी नहीं। गंगा का सहोदर है शूद्र। दोनों विराट् के पैर से निकले हैं।

- प्रत्यक्ष मैंने ब्राह्मण को तिरस्कृत करने वालों को बरबाद होते देखा है। पृष्ठ १९

+ आपने भी तो धर्मशुद्धि में ब्राह्मणों का अपमान ही किया है।

- मैं गारण्टी से कुछ नहीं कह सकता। पृष्ठ २०

+ अंग्रेजी आपको आती नहीं तो गारण्टी कैसी?

- अनधीयाना व्रात्या भवन्ति। पृष्ठ २१

+ तेषु भवन्तः श्रेष्ठाः।

- स्वतन्त्र विचार उन्मत्तों के प्रलाप की तरह ही हैं। पृष्ठ २२

+ फिर भी आपने २७४ पृष्ठों में वही किया है।

- 'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।' पृष्ठ ३५

+ आगे की पंक्ति क्या है? श्लोक कहाँ का है? प्रकरण क्या है? (इसका क्रम सम्बन्ध ६/२३९ है।) आगे ढूँढ़ कर आप बतलायें।

- क्या द्विजों में भी अलग जाति है? कदापि नहीं। पृष्ठ ३६

- द्विजों में जातियाँ नहीं होतीं; ऐसा पीछे कह चुका हूँ। पृष्ठ ३७.

+ आपने वर्ण और जाति को एक में मिलाकर गड्डमड्ड कर दिया। शूद्र वर्ग है। इसमें अनेक जातियाँ हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य में भी अनेक जातियाँ

हैं। केवल ब्राह्मण वर्ण की बात की जाय तो इसमें इतनी विविध जातियाँ हैं जिनमें परस्पर विवाह नहीं होता। उदाहरण के रूप में मैथिल; बंगाली, पंजाबी, सनाढ्य, जुझौतिया, गौड़, कौल, पहाड़ी (जोशी, नौटियाल, घिल्डियाल आदि), उड़िया (महापात्र, मोहन्ती, सत्पथी) आदि। सम्पूर्ण देश में ब्राह्मण वर्ण में अनगिनत जातियाँ हैं। ये परस्पर रोटी बेटी का सम्बन्ध नहीं रखतीं। कमलाकान्त जी पहले यह स्पष्ट कर लीजिए कि वर्ण; जाति और उपजाति में क्या अन्तर है?

- मुसलमानों में जिनकी शेख संज्ञा है वे ब्राह्मण ही शूद्रत्व को प्राप्त हुए हैं। पृष्ठ ४९

+ शैख (भूर्जकण्टक) शेख नहीं हैं। मनुस्मृति के वैदेह और रामायण के विदेह (जनक) अलग अलग हैं। शैख हिन्दू के अन्तर्गत है, जबकि शेख मुसलमान है। शैख गोमांस नहीं खाता। यदि शैख और शेख एक हैं तो मनुस्मृति सातवीं शताब्दी की रचना सिद्ध हो जायेगी।

- वे सच्चरित्र शूद्र की स्त्रियाँ भी मेरी मातायें ही हैं। पृष्ठ ५१

+ तो फिर सच्चरित्र एवं सन्त शूद्र पिता क्यों नहीं?

- ज्यादा क्या कहूँ बिगड़ी हुई नारियाँ भी मेरी दृष्टि में मातृवत् ही हैं। पृष्ठ ५१

+ इस सद्भाव के लिए धन्यवाद।

- एक ही स्त्री तलाक प्रक्रिया द्वारा न जाने कितनों की जायज पत्नी हो सकती है। पृष्ठ ५२

+ इस्लाम का पुरुष ताकतवर है। वह परित्यक्ता को पत्नी बना लेता है पर हिन्दू उसे जला डालता है, या बाहर भटकने को छोड़ देता है।

- हमारे ब्राह्मण श्रेष्ठ पण्डित नरेन्द्र जगन्नाथ शाहजहाँ की लड़की को रख लिये थे। पृष्ठ ५३

+ आपका इतिहास ज्ञान शून्य है। 'रख लेना' चरित्रहीनता है।

- शूद्र का स्वाभाविक कर्म है द्विजाति सेवा। पृष्ठ ६०
+ आप तो उनकी छाया और दृष्टि को भी अशुभ मानते हैं फिर सेवा कैसे होगी?
- जैमिनी का धर्मलक्षण- 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' ही एकमात्र धर्म का लक्षण है। कणाद का धर्म लक्षण- 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' धर्म को गृहीत नहीं कर पाता है। इसे कुंमारिलभट्ट ने निरस्त कर दिया है। पृष्ठ ७१
+ जैमिनी का धर्मलक्षण मीमांसा की दृष्टि से है और उसमें पदार्थ तथा क्रियाविशेष याग से उत्पन्न धर्म का लक्षण है; जबकि कणाद का धर्मलक्षण अभ्युदय और निःश्रेयस् का प्रतिपादक है। कुमारिलभट्ट कणाद के धर्मलक्षण में जिन दोषों को ढूँढ़ रहे हैं वे सारे दोष मीमांसा की याग प्रक्रिया में निहित हैं। वैसे भी कुमारिलभट्ट के प्रायशः मतों का परवर्ती आचार्यों ने प्रतिपद खण्डन कर दिया है।
- जैसे कोई विद्यार्थी विद्याग्रहण करता है। पूरा पढ़ लेने पर भी यदि विद्या गृहीत नहीं हुई तो यही समझता है कि इतने सालों तक पढ़ता रहा ज्ञान नहीं हुआ। गुरु जी सिर्फ सरकारी वेतन लेकर कुटुम्बपोषण करते हुए नरक का रास्ता ही प्रशस्त करते रहे। पढ़ाई में ध्यान नहीं दिया। पंक्ति का भाव पूछने पर टाल मटोल करते रहे। मास में तीन दिन ही विभाग में आते रहे। जब संस्कृत विश्वविद्यालय के बाहर किसी सिद्ध शास्त्रैकपरायण गुरु से पढ़ना प्रारम्भ किया तो एक वर्ष में ही विषय का ज्ञान होने पर अनुमान से ज्ञान को समझा, केवल वेतन लेकर प्रपञ्च बढ़ाने से कोई अध्यापक नहीं हो सकता। प्रोफेसर साहेब ने मेरा कई वर्ष बरबाद किया और मैं मूर्ख ही रहा। आज त्यागमय जीवन बीताने वाले सिद्ध गुरु के चरणों के प्रभाव से मुझे शास्त्रीय विषय ज्ञात हुआ। पृष्ठ ८८
+ कमलाकान्त वितण्डावादी हैं। २३ अगस्त २००५ के 'दैनिकजागरण' तथा २५ अगस्त २००५ के 'हिन्दुस्तान' (इंटरनेट से देखें अथवा फाइल से) ने लिखा है कि पूर्वमीमांसा में एक भी छात्र नहीं है। कमलाकान्त प्रयास

करते हैं कि किसी भी छात्र का प्रवेश शास्त्री या आचार्य में न हो अन्यथा कक्षा लेनी पड़ेगी और पढ़ाने के लिए बैठना पड़ेगा। इनका प्रतिदिवसीय कार्य है विभाग में आना और पाँच दस मिनट बाद वहाँ से कहीं और निकल जाना। आचार्य कहलाने के लिए छात्र को पढ़ाना पड़ेगा। अनाध्याय का पाप इनको अलग से लगेगा। सभी प्रकार के छल प्रपञ्चों से घिरा आदमी अन्य पढ़ाने वाले अध्यापकों की निंदा करने का अधिकार नहीं रखता। अन्य विभागों के प्राध्यापक, छात्रों को पढ़ाते तो हैं। यह आदमी हरिप्रसाद के साथ घूम घूम कर धन ऐंठने की योजना बनाने में लिप्त रहता है। इसे धर्म, स्वर्ग, ईश्वर या कर्मफल का भय नहीं है।

• दलित, शोषित, पिछड़ा, आभिजात्य, शोषक आदि आदि पारिभाषिक शब्द गढ़े जा रहे हैं। पृष्ठ १००

+ ये शब्द सत्ता द्वारा गढ़े नहीं गये हैं। इनको वामपंथी विचारधारा ने हिन्दुओं के सर्वनाश के लिए गढ़ा है। इनका मुख्य प्रतिपाद्य है हिन्दूसंस्कृति का नाश और मीमांसा का सर्वनाश। आपको और कुछ पढ़ने की जरूरत नहीं; क्योंकि तन्त्रवार्तिक ही आपके लिए वेद है।

• किसी पीड़ित को यदि मुक्ति दिलानी हो तो उसके लिए हिंसा ही पुण्य होगा जिसे कुछ लोग नहीं मानते। पृष्ठ १०७

+ आप उस निमर्म हत्यारे व्यक्ति की तरह हैं जो अपने पड़ोसी के घर में चन्द्रशेखर आजाद और भगत सिंह पैदा होने की प्रार्थना करता है और अपने घर में जवाहरलाल माँगता है। आप नेतृत्व करें। रायफल उठायें। हम कहेंगे- कमलाकान्त जिंदाबाद।

• नीतिनिर्धारण के लिए यह आवश्यक नहीं कि किसी भी माध्यम से चुने गये सांसद जो चाहें वही करें। श्रोत्रिय विद्वानों से परामर्श लेना भी आवश्यक है। पृष्ठ १२०

+ आप सुबुद्ध हैं। श्रोत्रिय ब्राह्मणों की पार्टी बना कर चुनाव लड़ जायें। हमलोग साथ देंगे और आप नीति निर्धारण करेंगे। हाँ; संसद में यदि आप धर्मशुद्धि करने लगे तो आपकी शुद्धि लालू और पासवान भाई कर डालेंगे।

- तस्माच्छ्रेयांसं पूर्वं यन्तं पापीयान् पश्चादन्वेति। याग में किसी कार्यविशेष के अवसर पर घोड़े के आगे और गधे के पीछे चलने पर यह हेतु उपन्यस्त है। पृष्ठ १२७

+ आप घोडा और गधा दोनों पाल लें। इससे आपके दो कार्य सिद्ध होंगे- १. याग कार्य और २. आपका चुनाव चिह्न भी आपको मिल जायेगा।

- आज बहुत से आचार्यपीठ दृष्टिगोचर हो रहे हैं जिनमें आचार्य बन कर बहुत से भद्र पुरुष आरूढ़ हैं। अपार सम्पत्ति हासिल करके वे आज मात्र उसका लेखा जोखा कर रहे हैं। पृष्ठ १३७

+ लार टपक रही है न। ये तो अच्छा किया आपने जो अनार्य मर्यादा पीठ की स्थापना कर उसके अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष बन गये। एक कमी है। पीठाधीश्वर को लेक्चरर रहना ठीक नहीं। इस्तीफा कर दें।

- भीष्म ने धर्म के लिए विवाह किया था और ऊर्ध्व रेता भी रहे। पृष्ठ १६४

+ आपकी स्थापना व्यास जी की स्थापना से बड़ी है।

- संन्यासी आदि विरक्तों को दान देना पाप है। पृष्ठ १६५

+ यह किस ग्रन्थ में लिखा है?

- यदि वि.हि.प. शूद्रों को आचार्य बना रहा है तो मैं कहाँ कह रहा हूँ कि विहिप अच्छा कार्य कर रहा है। पृष्ठ १७३

+ महोदय; वि.हि.प. स्त्रीलिङ्ग है। आचार्य बनाने का काम आपका है पर आप के मीमांसा विभाग में तो भूत पढ़ते हैं। वहाँ छात्रों का प्रवेश वर्जित है।

- कलि अवतार दयानन्द और श्रीराम शर्मा जैसे पातकियों का कुत्सित प्रयास चला और कुछ क्षेत्र में उनके अनुयायियों द्वारा चल भी रहा है। पृष्ठ १८१

+ पूज्य स्वामी दयानन्द सरस्वती और पूज्यश्री राम शर्मा को दी हुई गालियाँ आपके व्यक्तित्व की संरचना और आपके संस्कार को प्रकट कर रही हैं।

- दयानन्द, श्री राम शर्मा आदि सर्वथा ज्ञान से शून्य रहे हैं। पृष्ठ १८३

+ यह 'सर्वथा ज्ञान' क्या है? आपकी विद्वता की पहचान है क्या? (शुद्ध वाक्य होगा- 'ज्ञान से सर्वथा शून्य')।

- मातुलकन्या विवाह दुराचार है। इस दुराचार का वर्जन होना ही चाहिए। पृष्ठ १९३

+ कमलाकान्त जी! यह विषय विगत एक हजार वर्ष से निर्णीत है। आप इसको नये सिरे से उठा रहे हैं। आपने अपने गुरु स्व. पट्टाभिराम शास्त्री से पूछा होता तो वे इसका गूढ़ार्थ प्रतिपादित कर देते। सन् १७९० में 'काशी नाथ उपाध्याय ने 'धर्म सिन्धु' की रचना की। यह ग्रन्थ 'निर्णय सिन्धु' का सारतत्त्व है। भारतवर्ष के समस्त जनपदों में इसके निर्णय मान्य हैं। इस ग्रन्थ में मातुलकन्याविवाह से सम्बन्धित निर्णय में निम्नलिखित बातें आयी हैं-

'गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा' इति मातुलकन्या-विवाहस्य कलिवर्ज्यत्ववचनरपि येषां कुले देशे मातुलकन्या-विवाहो नास्ति तत्परम्। मातुलकन्यापरिणयनस्यानेकश्रुतिस्मृतिसिद्धत्वात्।' धर्मसिन्धुः तृतीयपरिच्छेदः सापिण्ड्यसंकोचविचारः

इसमें निर्णय दिया गया है कि मातुलकन्या से विवाह श्रुति स्मृति सिद्ध है। अतः जिनके यहाँ यह विवाह होता है वहाँ कुलपरंपरा का पालन करना चाहिए।

'मातुलकन्यैव तृतीया पूर्वोक्तरीत्या कुलपरंपरागतत्वे परिणेया।' मामा की कन्या ही तीसरी है। यदि यह कुलपरम्परागत है तो विवाह योग्या है। संस्कार कौस्तुभ भी कहता है- कलावपि येषां कुले देशे अनुकल्पत्वेन सापिण्ड्यसंकोचः परम्परया समागतः तेषां तादृशसंकोचेने विवाहे न दोषः। अस्ति च भार्यात्वोपपत्तिः। अन्येषां तैः सह व्यवहारे नैव दोषः' इति।

इससे सिद्ध है मातुलकन्या से विवाह प्राचीन परम्परा से होता आ रहा है। वेद में भी इस संदर्भ में मंत्र उपलब्ध हैं-

आयाहीन्द्र! पथिभिरीडितेभिर्यज्ञमिमं नो भागधेयं जुषस्व।

तृप्तां जहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वस्रेयी वपामिव।। ऋ.४/५/४/२३

इस मंत्र को मीमांसा के अनुसार आपने काटने की चेष्टा की है और इसे नियम विधि में नहीं माना है। पर इस मंत्र में कौन-सी विधि है? और इन्द्र को बुला कर उसका भाग दिया जा रहा है, उसे तृप्त किया जा रहा है इसका निषेध किस श्रुति वाक्य से होगा? तन्त्रवार्तिक से वेद मंत्र का निषेध विद्वज्जन तो नहीं मानेंगे। 'न्यूनादतिपूरणम्' पूर्ववर्ती को निषिद्ध करने के लिए परवर्ती कैसे आयेगा? श्रुति को स्मृति कैसे निषिद्ध करेगी? साथ ही सर्वत्र निबन्ध ग्रन्थों में इसके विधिपरक अर्थ भरे पड़े हैं। मानसिक दुराचार तो आप फैला रहे हैं, गाली गलौज करके।

- बौद्ध-जैन-ईसाई-मुसलमानों के ग्रन्थ वेदों की तरह अपौरुषेय हो ही नहीं सकते। क्यों? 'असन्नियमात्।'' पृष्ठ १९७

+ 'असन्नियमात्' सूत्र का आदर होना चाहिए। अत: तन्त्रवार्तिक, शबरभाष्य, जैमिनिसूत्र, मनुस्मृति का अपौरुषेयत्व न होने से इसका प्रामाण्य विखण्डित ही होगा।

- गोतम अनुमान से और बादरायण वेद से यह सिद्ध करते हैं कि ईश्वर है। जैमिनि तो अनुमान को दूषित करके वेद के तात्पर्य को अन्यथा स्वीकार करके ईश्वर के अस्तित्व को ही डकार जाते हैं। पृष्ठ २५३

+ ईश्वर की सिद्धि के लिए अनुमान, प्रत्यक्ष, वेद या उपमान आदि प्रमाण की आवश्यकता क्यों? यह सनातन देश ईश्वर पर अपना अधिकार रखता है। किसी की श्रद्धा और मान्यता को खण्डित करने का अधिकार दूसरे को नहीं है। जैमिनि का सिद्धान्त समाज द्वारा अस्वीकृत है। वेद के तात्पर्य को अस्वीकृत करके जैमिनि स्वीकार्य कैसे हो सकते हैं? यही कारण है जैमिनि का धर्म लक्षण, ईश्वर खण्डन, जैमिनि ज्योतिष आदि धीरे धीरे विस्मृति के गह्वर में विलीन हो गया। आपने भी आरम्भ में जैमिनि के कर्म की स्थापना करते हुए ईश्वर का खण्डन किया है। जैमिनि के लिए 'डकारना' शब्द का प्रयोग करके आपने उनके सिद्धान्त को हेय दिखलाया है। एक तरफ ईश्वर

का खण्डन और दूसरी तरफ प्राचीन विश्वनाथ मंदिर के न्यास में अपना अधिकार पाने की वाञ्छा आपके दिग्भ्रमित (कन्फ्यूज्ड) व्यक्तित्व को सूचित करती है। आपने कभी यह नहीं सोचा कि- प्राचीन विश्वनाथ मंदिर के प्रति आपका लिखित असत्य वक्तव्य भविष्य के लिए विश्वनाथ मंदिर के अस्तित्व के लिए संकट खड़ा कर सकता है। वामपंथी इतिहासकार कहते हैं- 'औरंगजेब ने विश्वनाथ मंदिर को इसलिए तोड़ा कि यहाँ के पण्डे तीर्थयात्री महिलाओं से बलात्कार करते थे।' आपमें और वामपंथियों में क्या अन्तर है? आपका छोटा भाई श्रीकान्त कार्ड होल्डर कम्युनिस्ट है। ऐसा प्रतीत होता है कि आप भी वामपंथी खेमे की सदस्यता ग्रहण कर चुके हैं।



वेदोक्त चार महावाक्य

हिन्दूधर्म की महत्ता को सम्पूर्ण विश्व में वेद महावाक्य स्थापित करते हैं। वेदों को स्मृतियों के द्वारा निरस्त नहीं किया जा सकता न तो हिन्दू धर्म की विशालता को समेट कर न्यून किया जा सकता है। अतः महावाक्यों के गूढ़ार्थों को लक्षित करना आवश्यक है-

i- **प्रज्ञानं ब्रह्म** (ऐ. ५/१) [समस्त इन्द्रियों एवं अन्तःकरण में विद्यमान चैतन्य ही ब्रह्म है।]

ii- **अहं ब्रह्माऽस्मि** (बृ. १/४/१०) [मैं ब्रह्म हूँ।]

iii- **तत्त्वमसि** (छा. ६/८/७) [ब्रह्म और आत्मा एक ही हैं।]

iv- **अयमात्मा ब्रह्म** (ब्र. २/५/१९) [स्वयं प्रकाश आत्मा ही ब्रह्म है।]

प्रत्येक हिन्दू ईश्वर का अंश है- "जन्माद्यस्य यतः" और "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति" ब्रह्मसूत्र और गीता के ये वाक्यप्रमाणभूत हैं। इनको महापतित, चाण्डाल, शूद्र कहने वाला क्या हो सकता है? यह समाज ही बतलायेगा।



मनुस्मृति से याज्ञवल्क्यस्मृति की तुलना

डॉ. कपिल देव गिरि

मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति में काफी समानता है। फिर भी महर्षि याज्ञवल्क्य मनु की बहुत बातों को नहीं मानते हैं। कुछ बातों को लेकर विचार करने पर मनु से बहुत बाद के विचारक ठहरते हैं। मनु और याज्ञवल्क्य के विचारों में जो भिन्नतायें पायी जाती हैं वे निम्नोक्त हैं-

१. मनु ब्राह्मण को शूद्र की कन्या से विवाह का आदेश देते हैं-

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते।
ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः।।३/१३।।

परन्तु याज्ञवल्क्य ने ऐसा आदेश नहीं किया है (याज्ञ. १/५९)

२. मनु ने नियोग का वर्णन किया, फिर उसकी निन्दा की है- (मनु. ९/५९-६८) किन्तु याज्ञवल्क्य ने ऐसा नहीं किया (याज्ञ. १/६६९)।

३. मनु पुत्रहीन पुरुष की विधवा पत्नी के दायभाग पर मौन साधे हुए हैं, परन्तु याज्ञवल्क्य इस विषय में बिल्कुल स्पष्ट हैं तथा विधवा को सर्वोपरि स्थान देते हैं (याज्ञ. २/१३५)

४. मनु जुआ की निन्दा करते हैं; किन्तु याज्ञवल्क्य ने जुआ को राज्य नियंत्रण में रखकर राजकीय कर का एक साधन बना दिया है। (याज्ञ. २/२००-२०३)

५. मनु ने अट्ठारह व्यवहार पदों के नाम गिनाये हैं किन्तु याज्ञवल्क्य ने ऐसा न करके केवल व्यवहार पद की परिभाषा दी है और एक अन्य प्रकरण में व्यवहार पद पर विशिष्ट श्लोक जोड़ दिया है।

इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर याज्ञवल्क्य प्रौढ़ विचारक हैं, मनु से कई एक बातों में मौलिक तथा सामयिक दृष्टिकोण रखते हैं और मनु से बहुत आगे हैं।



प्राचीन हिन्दू धर्म में जातियाँ

प्राचीन भारतवर्ष में सनातन (हिन्दू) धर्म में जातियों की संख्या कम थी।

यजुर्वेद में जातियाँ

अतिक्रुष्टाय मागधम् सूतकम् रथकारम् कौलालम् कर्मारम् पौंजिष्ठम् नैषादम् गोपालम् अविपालम् व्वासः रजयित्रीम् चर्म्मनम्म् दाशम् कैवर्तम् षणकम् किरातम् हिरण्यकारम् चाण्डालम् वंशनर्तिनम्।।

इन्हें संकरजाति कहा गया है। इनको मागध, सूत, रथकार, कलाल, कुम्हार, पौजिष्ठ निषाद, ग्वाला, गड़ेरिया (अविपाल), धोबी, रंगरेज, चमार, दास, मल्लाह, भील, किरात, सुनार, चाण्डाल और नट के रूप में कहा गया है। 'बृहत् सनातन धर्म मार्तण्ड' ग्रन्थ में लिखा है कि यजुर्वेद माध्यन्दिनी संहिता में छत्तीस जातियों का उल्लेख मिलता है।

मनुस्मृति में जातियाँ

मनुस्मृति के दशवें अध्याय में कुल ३४ जातियों का वर्णन मिलता है-

क्रम	जाति	पिता + माता
१	ब्राह्मण	(ब्राह्मण+ब्राह्मण स्त्री)
२	क्षत्रिय	(क्षत्रिय+क्षत्रिय स्त्री)
३	वैश्य	(वैश्य+वैश्य स्त्री)
४	शूद्र	(शूद्र+शूद्र स्त्री)
५	अम्बष्ठ	(विप्र+वैश्य स्त्री)
६	निषाद (पारशव)	(विप्र+शूद्र स्त्री)
७	उग्र	(क्षत्रिय+शूद्र स्त्री)
८	सूत	(क्षत्रिय+विप्र स्त्री)
९	मागध	(वैश्य+क्षत्रिय स्त्री)
१०	वैदेह	(वैश्य+विप्र स्त्री)

क्रम	जाति	पिता + माता
११	आयोगव	(शूद्र+वैश्य स्त्री)
१२	क्षत्ता	(शूद्र + क्षत्रिय स्त्री)
१३	चाण्डाल	(शूद्र + विप्र स्त्री)
१४	आवृत्त	(विप्र + उग्र स्त्री)
१५	आभीर	(विप्र + अम्बष्ठ स्त्री)
१६	धिग्वण	(विप्र+आयोगव स्त्री)
१७	पुक्कस	(निषाद+शूद्र स्त्री)
१८	कुक्कुट	(शूद्र + निषाद स्त्री)
१९	श्वपाक	(क्षत्ता+उग्र स्त्री)
२०	वेण	(वैदेह+अम्बष्ठ स्त्री)
२१	भूर्जकण्टक (इन्हें आवन्त्य,वाटधान,पुष्पध,शैख भी कहते हैं)	(व्रात्य विप्र+विप्र स्त्री)
२२	झल्ल-मल्ल-निच्छिवि-नट-करण-खस-द्रविड	(व्रात्य क्षत्रिय+क्षत्रिय स्त्री)
२३	सुधन्वा, आचार्य (इन्हें कारुण,विजन्मा,मैत्र,सात्वत भी कहते हैं।)	(व्रात्य वैश्य+वैश्य स्त्री)
२४	दस्यु जाति	अनार्यभाषाभाषी हिन्दू आर्यभाषाभाषी अहिन्दू
२५	सैरिन्ध्र	(दस्यु+आयोगव स्त्री)
२६	मैत्रेयक	(वैदेह+आयोगव स्त्री)
२७	मार्गव, दास (कैवर्त, केवट, मल्लाह)	(निषाद+आयोगव स्त्री)
२८	चर्मकार (कारावर)	(निषाद+वैदेह स्त्री)
२९	अन्ध्र	(वैदेह+निषाद स्त्री)
३०	मेद	(वैदेह+कारावर स्त्री)

क्रम	जाति	पिता + माता
३१	पाण्डुसोपाक	(चाण्डाल+वैदेह स्त्री)
३२	आहिण्डक	(निषाद+वैदेह स्त्री)
३३	सोपाक	(चाण्डाल+पुक्कस स्त्री)
३४	श्मशानवासी (जल्लाद)	(चाण्डाल+निषाद स्त्री)

बहुत प्रयत्न करने पर भी ३६ से अधिक जातियाँ स्मृतियों और वेदों में नहीं मिलीं। पुराणों में स्थान भेद से जातिभेद के उदाहरण मिलते हैं पर इन उदाहरणों को लेकर भी ये जातियाँ सौ की संख्या पूरी नहीं कर पातीं। **अतः आवश्यक है कि यह ढूंढ़ा जाय कि २३३० जातियाँ 'मुगल काल' में तथा अंग्रेजों के काल में ३६०० और स्वतंत्र भारत में ४००० की संख्या में हिन्दुओं में जातियाँ कहाँ से आ गयीं?**

माननीय **श्री अशोक सिंहल जी** ने इस दिशा में शोधकार्य हेतु अनेक विद्वज्जनों को प्रेरित किया है। उनका स्व अभिमत निम्नप्रकार से है-

"सत्य तो यह है कि २३३० अनुसूचित जातियों और जनजातियों का निर्माण जिनमें से अधिकांश अस्पृश्य मानी जाती हैं, भारत में इस्लाम और उसके बाद के काल में हुआ। इस्लाम के आगमन के पूर्व हमारे देश में सामाजिक अस्पृश्यता कहीं भी नहीं थी। इस्लाम के साथ जिस किसी जाति समूह ने लोहा लिया और वे पराजित हुए वे समाज बहिष्कृत ही नहीं किये गये उन्हें अस्पृश्य घोषित किया गया और सार्वजनिक कुओं से पानी भी नहीं भरने दिया गया। इन स्वतंत्रता सेनानियों का दोष मात्र इतना ही था कि वे देश और धर्म की रक्षा के लिये लड़े और अपूर्व बलिदान किया। सब कुछ गवाँ कर भी धर्म को नहीं छोड़ा।"

(प्रस्तावना, हिन्दू व्यवस्थाओं की उत्तमत्ता पर एक नजर, लेखक श्री ब्रह्मलोचन दुबे, प्रयाग)

प्राचीन भारत में प्रायश्चित और वृषलत्व (शूद्रत्व) निवारण निस्तारण होता रहता था मध्यकाल में यह क्रम टूट गया। इसमें विप्रों का ही दोष है। हमें समस्त हिन्दू समाज को प्रेरित करते रहना चाहिए और समाज के किसी भी अंग को रोग ग्रस्त नहीं होने देना चाहिए।



सनातनधर्म[1]

महामना पं. मदन मोहन मालवीय

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति।
धर्मेण पापमपनुदन्ति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति।।

धर्म ही सारे जगत् की प्रतिष्ठा (मूलाधार) है। संसार में प्रजा लोग धर्मशील पुरुष के पास पहुँचते हैं। धर्म से पाप को दूर करते हैं। धर्म में सब प्रतिष्ठित है; अर्थात् धर्म के मूलाधार पर सब स्थित है, इसलिये धर्म को सबसे बड़ा कहते हैं।

विद्या रूपं धनं शौर्यं कुलीनत्वमरोगिता।
राज्यं स्वर्गश्च मोक्षश्च सर्वं धर्मादवाप्यते।।

विद्या, रूप, धन, शौर्य, वीरता, कुलीनता, आरोग्य, राज्य, स्वर्ग और मोक्ष- ये सब धर्म से प्राप्त होते हैं। सबसे बड़ा उपकार जो किसी प्राणी का कोई कर सकता है, वह यह है कि उसको धर्म का ज्ञान करा दे, धर्म में उसकी श्रद्धा उत्पन्न कर दे अथवा दृढ़ कर दे। संसार में धर्म के ज्ञान के समान कोई दूसरा दान नहीं है। सनातनधर्म सब मतों के अनुयायियों के उपकार के लिये है। इस सनातनधर्म का उत्तम वर्णन श्रीमद्भागवत के ७वें स्कन्ध के ११वें अध्याय से लेकर १५वें अध्याय तक पाया जाता है। उसमें लिखा है कि-

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्।।

संतोषः समदृग्सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्।।

अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेष्वात्मदेवता बुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव।।

श्रवणं कीर्त्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्।।

---

१. सनातनधर्म साप्ताहिक, वर्ष २, अंक १, ता. १७ जुलाई, १९३४ ई.

नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति।।

हे राजन्! यह तीस लक्षणवाला धर्म, समस्त मनुष्यमात्र का परम धर्म है, जिसके पालन से घट-घट में व्याप्त परमात्मा प्रसन्न होते हैं।

महाभारत में इस धर्म के मूलतत्व का वर्णन है-

एष धर्मो महायोगो दानं भूतदया तथा।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशो धृतिः क्षमा।।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत्सनातनम्।

महाभारत, अश्वमेध पर्व, अ. ९१, श्लोक ३२।

यह धर्म बड़े बड़े गुणों का समूह है। दान, प्राणिमात्र पर दया, ब्रह्मचर्य और इन्द्रियों को वश में रखना तथा सत्य का पालन, प्राणियों के दुःख में सहानुभूति, धीरज और क्षमा, ये सनातन धर्म के मूल हैं। यह धर्म ऐसे हैं कि संसार के सब धर्मों और सब सम्प्रदायों के अनुयायी इनका पालन कर इस लोक में सुख, शान्ति और सुयश तथा परलोक में उत्तम गति पा सकते हैं।

महाराज मनु कहते हैं-

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।

वेद सब धर्म के मूल हैं। याज्ञवल्क्य ऋषि कहते हैं-

पुराणन्याय मीमांसा धर्मशास्त्रांग-मिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।

वेदांग, स्मृति, पुराण सहित चारों वेद सब विद्याओं और सब धर्म के स्थान हैं। इस बात को पश्चिम के विद्वान् भी मानते हैं कि संसार में सबसे पुराना ग्रन्थ ऋग्वेद है।

आज सनातनधर्म के मानने वालों को धर्म का मार्ग-दर्शन कराने के लिये श्रुति (वेद), स्मृति और पुराणों के साथ आगम भी सम्मिलित हैं; किन्तु इन सब शास्त्र समूह में, जो धर्म के मूल सिद्धान्त हैं, वे सनातन हैं; अर्थात् सबसे पुराने हैं, उनसे पहले का कोई सिद्धान्त संसार में विदित नहीं है। इन सिद्धान्तों

में कुछ मूल सिद्धान्त हैं। सनातनधर्म का शुद्ध स्वरूप और इसकी महिमा जानने के लिये इन सिद्धान्तों का जानना आवश्यक है। वे ये हैं-

प्रथम यह है कि इस ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन और संहार करने वाला, त्रिकाल में सत्य (अर्थात् जो सदा रहा भी, अब भी है और सदा रहेगा भी), चैतन्य अर्थात् ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप पुरुष है जिसको परमात्मा कहते हैं। वह आदि (जो सब सृष्टि से पहले), अज (जिसका कभी जन्म नहीं हुआ और जिसका न कोई पिता है, न माता है) और अविनाशी (जिसका कभी नाश नहीं होता) है।

वेद स्पष्टतः कहते हैं कि सृष्टि के पहले यह जगत् अंधकारमय था। उस अंधकार के बीच में और उससे परे, केवल एक ज्ञानस्वरूप स्वयंभू (अपने आप हुए) भगवान् विराजमान थे। उन्होंने उस अंधकार में अपने आप को प्रकट किया और अपने तप से अर्थात् अपनी ज्ञानमयी शक्ति के संचालन से सारी सृष्टि को रचा।

सनातनधर्म के सब धर्मग्रंथ दुंदुभीनाद करते हैं कि वह परमात्मा एक ही है। वेद कहते हैं "एकमेवाद्वितीयम्" अर्थात् एक अकेला है, उसके समान कोई दूसरा नहीं।

स्मृति कहती है (मनु, याज्ञवल्क्य आदि)- सब जगत् का शासन करने वाला, छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा, जिसको आंखों से देख नहीं सकते, केवल बुद्धि से ही पहचान सकते हैं, एक परमात्मा है। महाभारत आदि से अंत तक बार-बार घोषणा करता है-

तस्यैकत्वं महत्वञ्च स चैकः पुरुषः स्मृतः।
महापुरुषशब्दं स बिभर्त्येकः सनातनः।।

भागवत कहता है-

एकः स आत्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनन्तमाद्यः।
नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः पूर्णोऽद्वयोऽयुक्त उपाधितोऽमृतः।।

शिवपुराण कहता है-

एक एव तदारुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन।।

वेद, स्मृति, पुराणों के इसी सिद्धान्त को आगम गाते हैं और इसी को आधुनिक संत महात्माओं ने अपने-अपने शब्दों में गाया है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने थोड़े अक्षरों में इस तत्त्व को पूर्णरीति से वर्णन किया है-

व्यापक एकब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आनँदरासी।।
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम असगावा।।
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै बिधि नाना।।
आननरहित सकल रसभोगी। बिनु बाणी बक्ता बड़ जोगी।।
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहै घ्राण बिनु बास असेखा ।।
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा तासु जाई किमि बरनी।।

वर्णाश्रम[१]

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति।
धर्मेण पापमपनुदन्ति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति।।

उपनिषद् कहती हैं- सारा जगत् धर्म के मूल पर स्थित है, इसीलिये लोक में लोग उसी के पास जाते हैं, जो धर्मिष्ठ है। धर्म से पाप को दूर करते हैं। धर्म में सब प्रतिष्ठित हैं, इसलिये धर्म को सबसे बड़ा कहते हैं।

दूसरे स्थान में भी लिखा है-

विद्या रूपं धनं कुलीनत्वमरोगता।
राज्यं स्वर्गश्च मोक्षश्च सर्वं धर्मादवाप्यते।।

विद्या, रूप, धन, वीरता, कुलीनता, आरोग्य, राज्य, स्वर्ग और मोक्ष- ये सब धर्म से प्राप्त होते हैं।

सनातनधर्म पृथ्वी पर सबसे पुराना और पुनीत धर्म है। यह वेद, स्मृति और पुराण से प्रतिपादित है। संसार में सब धर्मों से यह इस बात में विशिष्ट है कि यह सिखाता है कि इस जगत् का सृजन, पालन और संहार करने वाला आदि, सनातन, अज, अविनाशी, सत्‌चित्त, आनन्दस्वरूप, पूर्ण प्रकाशमय,

१. सनातन धर्म वर्ष १, अंक ९.

परब्रह्म परमात्मा है। यह परमात्मा सदा, निरन्तर घट-घट वासी रहा है, और रहेगा; अर्थात् यह कि यह परमात्मा मनुष्य से लेकर सिंह, हाथी, घोड़े, गौ, हिरन आदि सब थैली से उत्पन्न होनेवाले जीवों में, अण्डों से उत्पन्न सब पखेरुवों में, पृथ्वी फोड़कर उगने वाले सब वृक्षों में, और पसीने मैल से उत्पन्न होने वाले सब कीट पतंगों में समान रूप से बस रहा है। इसी तत्वज्ञान के कारण-

एष धर्मो महायोगो दानं भूतदया तथा।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशो धृतिः क्षमा।।
सनातन धर्मस्य मूलमेतत् सनातनम्।।

यह धर्म बड़े गुणों का समूह है। दान, जीवमात्र पर दया, ब्रह्मचर्य, सत्य, दयालुता, धीरज और क्षमा इन गुणों का योग सनातनधर्म का सनातन मूल है। इन गुणों के कारण ही सनातन धर्म अन्य धर्मों से विशिष्ट है।

सनातन धर्म की दूसरी विशेषता वर्ण और आश्रम का विभाग है। जैसा भगवान् श्री कृष्ण ने अपने श्रीमुख से कहा है-

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

'मैंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र- इन चार वर्णों को गुण और कर्म के विभाग से रचा है'। गुण में जन्म भी अन्तर्गत है, इसलिये गुण कर्म के विचार में- जन्म, गुण और कर्म- तीनों का समावेश हो जाता है। जैसे विद्या और तप ब्राह्मण की ब्राह्मणता के आवश्यक अंग हैं, तथापि पूर्ण ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिये-

विद्या तपश्च योनिश्च त्रयं ब्राह्मणकारणम्।

विद्या, तप और ब्राह्मण माता-पिता से जन्म, ये तीनों आवश्यक हैं। ब्राह्मणों के ६ धर्म हैं : अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह। इनमें से तीन- अध्ययन, यजन और दान तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों के लिए समान हैं। वेद का पढ़ना, यज्ञ कराना और दान लेना- ये तीन विशेषकर ब्राह्मणों ही के कर्म हैं। यद्यपि अवस्था विशेष में क्षत्रिय और वैश्य भी वेद पढ़ा सकते

हैं। सामान्यतया इन तीनों विशेष कर्मों के करने का अधिकार उन्हीं ब्राह्मणों को होता है जो न केवल विद्या और तप से युक्त हैं किन्तु जो जन्म से भी ब्राह्मण हैं।

सामान्य रीति से, धर्म में चारों वर्णों के गुण अलग-अलग वर्णित हैं। महाभारत में शान्ति पर्व में वर्णों के लक्षण अलग-अलग इस प्रकार लिखे हैं।

जातिकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशो धृतिः क्षमा।।

शौचाचारस्थितः सम्यक् विघसाशी गुरुप्रियः।
नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते।।

क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययनसंगतः।
दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते।।

वणिज्या पशुरक्षा च कृष्यादानरतिः शुचिः।
वेदाध्ययनसंपन्नः स वैश्य इति संज्ञितः।।

सर्वभक्षरतिर्नित्यं सर्वकर्म करोऽशुचिः।
त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः।।

और इसके अंत में लिखा है-

शौचेन सततं युक्तः सदाचारसमन्वितः।
सानुक्रोशश्च भूतेषु तद्द्विजातिषु लक्षणम्।।

सदा शौच से युक्त रहना (काया और मन को शुद्ध रखना और शुद्ध भोजन करना), सदाचार का पालन करना, सब प्राणियों पर दया रखना, ये द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के लक्षण हैं।

इसी के साथ महाभारत में वनपर्व में लिखा है-

वर्णोत्कर्षमवाप्नोति नरः पुण्येन कर्मणा।
तथापकर्षं पापेन इति शास्त्रनिदर्शनम्।।

मनुष्य पुण्य कर्मों के करने से वर्ण में ऊपर उठ जाता है और नीच कर्म करने से नीचे गिर जाता है। यह शास्त्र कहता है

यह भी वहीं लिखा है-

शूद्रोपि शीलसंपन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत्।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रात् प्रत्यवरो भवेत्।।

शूद्र भी सुशील अर्थात् पवित्र चरित्रयुक्त और गुणवान हो, तो वह ब्राह्मण हो जाता है और ब्राह्मण भी अपना धर्म कर्म छोड़ दे या उससे रहित हो, तो वह शूद्र से भी नीचे गिर जाता है।

शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः।।

शूद्र में यदि ब्राह्मण के गुण हों और ब्राह्मण में वे गुण न हों, तो न वह शूद्र, शूद्र है और न वह ब्राह्मण, ब्राह्मण है।

युधिष्ठिर जी का वचन है-

सत्यं दानं क्षमाशीलमानृशंस्यं तपो दया।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः।।

यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः।
यत्रैतन्नभवेत्सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत्।।

हे नागेन्द्र! जिसमें सत्य, दान, क्षमा, शील, अहिंसा, तप, दया दिखाई दें, उसको ब्राह्मण कहते हैं।

जहाँ अच्छा शील स्वभाव दिखाई दे, उसको ब्राह्मण कहना; जहाँ ये न दिखाई दें, उसको शूद्र कहना चाहिए।

श्रीमद्भागवत में भी सातवें स्कन्ध में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के अलग-अलग गुणों का वर्णनकर नारद जी ने कहा-

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यंजकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्।।

अर्थात् जिस पुरुष का जो वर्ण प्रकट करने वाला लक्षण कहा गया है, जहाँ दूसरे में भी वह लक्षण दिखाई दे, तो उसको उसी गुण वाले वर्ण के नाम से बताना चाहिए।

इन वचनों से स्पष्ट है कि यदि जो पुरुष जन्म से ब्राह्मण हो, वह भी अपने धर्म-कर्म से रहित हो जाय या कुकर्म करने लगे तो वह शूद्र से भी नीचे गिर जाता है; और नीच से नीच शूद्र भी, यदि अच्छे आचारों को ग्रहण करे और ऊँचा पवित्र जीवन जीने लगे, तो वह भी ब्राह्मण के समान मान पाने के योग्य हो जाता है।

इसके अतिरिक्त यह प्रसिद्ध है कि भक्ति नीच से नीच प्राणी को भी ऊपर उठा देती है और भगवान् का प्रीतिपात्र बना देती है। उस भक्ति की यह महिमा है कि चाण्डाल भी भगवान् का नाम जपने से ब्राह्मण के समान आदर के योग्य हो जाता है। उसी भक्ति का साधन मंत्र-दीक्षा की विधि है। जैसा वैष्णव तंत्र में लिखा है-

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्।।

जैसे काँसे पर रस का प्रयोग करने से वह सोने के समान चमकने लगता है, वैसे ही मंत्र-दीक्षा के लेने से मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त करता है; अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के समान आदर के योग्य हो जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह शूद्र इस योग्य हो जाता है कि उससे द्विजजाति के लोग रोटी-बेटी का सम्बन्ध करें, उसको वेद पढ़ाने या यज्ञ कराने के लिये निमंत्रित करें। इसका यह अर्थ है कि सामान्य शूद्र या चाण्डाल में भी यदि विद्या, ज्ञान, शौच, आचार आदि द्विजों के गुण पाये जायें तो ज्ञान के क्षेत्र में और सामान्य सामाजिक व्यवहार में द्विज लोग उसका, उसकी विद्या, ज्ञान, सदाचार के अनुरूप आदर करें।

मेरा विश्वास है कि सनातनधर्म में तत्त्व को जानने वाले सब विद्वान् ऊपर लिखी व्याख्या को धर्मानुकूल मानेंगे। यदि यह धर्मानुकूल नहीं है तो मैं प्रार्थना करता हूँ कि निष्कल्मष, धर्मज्ञ, धर्मशील विद्वान् हिन्दूजाति पर और विशेषकर सनातनधर्मके अनुयायियों पर अनुग्रह करके यह बतावें, कि इसमें क्या दोष है? मेरा अभिप्राय यह है कि **जो सत्य और धर्म का मार्ग है, वही संसार को बताया जाय; और यदि ऊपर लिखे विचार शास्त्र के अनुकूल**

हैं, तो इन्हीं के अनुसार अछूतों की आर्थिकदशा सुधारकर, सदाचार सिखाकर और उनको मंत्र-दीक्षा देकर उनका उद्धार करना हमारा धर्म है। ईसाई, मुसलमान जिन अछूतों को अपने धर्म में मिलाते हैं, उनको अपने समाज में बराबर का स्थान देते हैं। अछूत सनातनधर्म समाज के अंग हैं; इनकी उन्नति करना, इनके दुःख दारिद्र्य को दूर करने का यत्न करना, इनको सामान्य और धार्मिक शिक्षा देना और समाज के दूसरे अंगों के समान इनकी रक्षा करना और इनको आगे बढ़ाना, हमारा आवश्यक कर्त्तव्य है। इससे हमारे धर्म की रक्षा और वृद्धि होगी और धर्म को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचेगी। हिन्दू जाति का इसी में भला होगा, ऐसे ही मार्ग के अवलम्बन करने से सनातन-धर्म की महिमा पूर्णरीति से स्थापित होगी। इसी प्रकार धर्मबुद्धि से धर्म के प्रश्नों का निर्णय करने से और उनके अनुसार चलने से समाज में धार्मिक एकता और शक्ति स्थापित होगी।



"महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय जी के अनुसार हिन्दू धर्म के उत्कर्ष के लिए धर्मबुद्धि की आवश्यकता है। वर्तमान काल में कालबाह्य लक्षणों को समाज पर लाद कर हिन्दू जाति को कमजोर करना 'धर्मशुद्धि' हो सकती है 'धर्मबुद्धि' नहीं। मालवीय जी के इन दो लेखों से उनके हृदय की विशालता और हिन्दू जाति के प्रति उनकी चिंता को समझा जा सकता है। इक्कीसवीं शताब्दी में मालवीय जी के चिंतन क्रम को और अधिक आगे बढ़ाने की आवश्यकता है।"

संपादक

धर्मचिन्तन

महामहोपाध्याय श्री सदाशिव शास्त्रि मुसलगांवकर

(यह लेख 'धर्मसिन्धु' ग्रन्थ के 'प्रास्ताविकम्' से उद्धृत है। इसे पढ़ने से धर्म से सम्बन्धित विस्तृत दृष्टि का विकास होगा। संपादक)

अचेतनापि चैतन्ययोगेन परमात्मनः।
अकरोद् विश्वमखिलमनित्यं नाटकाकृतिः।।

यह सम्पूर्ण विश्व प्रकृति का विस्तार है, जहाँ भी देखते हैं वहाँ उसी की प्रभा पाते हैं। प्रकृति ही विश्वोत्पत्ति की सामग्री है। प्रकृति गुणमयी है, उसके पाश से मुक्त होकर अपनी आत्मशक्ति को कैसे प्राप्त करें? यह चिन्ता होने पर महर्षि वेदव्यास कहते हैं-

धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानां
स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः।
अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना
नैवाप्तभावमुपयान्ति कुतो वशित्वम्।।

अभ्युदय के लिये सतत प्रयत्नशील लोगों की बुद्धि, धर्म में स्थित हो, परलोक में वही एकमात्र हितकारी सखा है। बड़े-बड़े चतुर कार्यकुशल लोगों की परिचर्या से भी धन और युवतियाँ अपनी आत्मीय नहीं बन पातीं, तब वह वशंगत कैसे हो सकती हैं। 'न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः। 'धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये', एक एव सुहृद् धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः। शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति।।' एक धर्म ही ऐसा मित्र है जो मरने पर भी जीव के साथ जाता है, और सब तो शरीर के नाश होते ही उसे छोड़कर चले जाते हैं। इत्यादि के द्वारा सभी के लिये धर्म की अत्यन्त आवश्यकता प्रकट की गई है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान् ने इसकी आवश्यकता बताई है- 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' 'कुरु कर्मैव तस्मात्त्वम्' 'स्वे-स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं

लभते नरः', इत्यादि। एक बार अनेक मुनियों ने धर्म की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए सभी वर्णधर्मों की शिक्षा देने के लिए भगवान् मनु से प्रार्थना की थी। याज्ञवल्क्यस्मृति के आरम्भ में भी इसी प्रकार धर्म की आवश्यकता बताई गई है। तन्त्रवार्तिक के रचयिता भट्टपाद ने भी 'सर्वधर्मसूत्राणां वर्णाश्रमधर्मोपदेशित्वाद्' लिखकर वर्णाश्रमधर्म की शिक्षा देना ही धर्मसूत्रों का कार्य बताया है। धर्म से ही चित्तशुद्धि होती है। चित्तशुद्धि के विना भगवान् की ओर ले चलने वाले कर्मयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के मार्ग पर कोई चल नहीं सकता। धर्म को आवश्यक समझ कर ही भगवती श्रुति आज्ञा देती है 'धर्मंचर' 'धर्मेण सुखमासीत' धर्मान्न प्रमदितव्यम्'- धर्म करो, धर्म से सुख होता है, धर्म में प्रमाद (असावधानी) नहीं करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि विश्व की सुस्थिति के लिये धर्म की अत्यन्त आवश्यकता है। अतएव कहा गया है- 'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा। अतः तपः पूत एवं त्रिकालज्ञ-निर्मलहृदय, कर्मनिष्ठ तथा ब्रह्मनिष्ठ हितैषी अपने पूर्वज महर्षियों की दी हुई उपर्युक्त साक्षी को ध्यान में रखकर भारतीय जनता स्वयं विचार कर ले कि राष्ट्र को धर्मनिरपेक्ष रखना संगत है या धर्मसापेक्ष। अब प्रश्न यह उठता है कि वह धर्म क्या है? जिसके बल पर विश्व की सुस्थिति निर्भर है। अतः सर्वप्रथम धर्म शब्द के अर्थ की ओर ध्यान दिया जाय।

'धर्म' शब्द 'धृञ्' धारणे धातु के आगे 'मनु' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। इसकी व्युत्पत्ति तीन प्रकार से हो सकती है- **१. 'ध्रियते लोकः अनेन' इति। २. 'धरति धारयति वा लोकम्' इति। ३. 'ध्रियते यः सः धर्मः' इति। पहिला- जिससे लोक धारण किया जाय, वह धर्म है। दूसरा- जो लोक को धारण करे वह धर्म है। तीसरा- जो दूसरों से धारण किया जाय, वह धर्म है।** महाभारतकार धर्म का लक्षण करते हैं- **'धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः। यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।।'** (कर्णप. ६९-५८)। धारण करने से लोग इसे धर्म कहते हैं। धर्म प्रजा को धारण करता है। जो धारण के साथ रहे वह

धर्म है। इससे स्पष्ट है कि 'धर्म' शब्द बहुत व्यापक है। अमरकोशकार ने भी 'धर्म' शब्द के अनेक अर्थ बताए हैं- १. सुकृत या पुण्य, २. वैदिकविधि यागादि, ३. यमराज, ४. न्याय, ५. स्वभाव, ६. आचार, ७. सोमरस पीने वाले- 'स्याद्धर्ममस्त्रिणां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः, धर्मस्तु तद्विधिः' 'धर्माः पुण्ययम-न्यायस्वभावाचारसोमपाः इत्यादि। कोषान्तरों में अन्यान्य अर्थ भी उपलब्ध होते हैं- १. शास्त्रोक्त कर्म के अनुष्ठान से उत्पन्न होने वाले भावी फल का साधनस्वरूप शुभ अदृष्ट अथवा पुण्यापुण्यरूपभाग्य, २. श्रौत और स्मार्त धर्म, ३. विहित क्रिया से सिद्ध होने वाला गुण या कर्मजन्य अदृष्ट, ४. आत्मा, ५. देह को धारण करने से जीवात्म, आचार, ६. वस्त्र का गुण, ७. स्वभाव, ८. उपमा, ९. याग, १०. अहिंसा, ११. न्याय, १२. उपनिषद्, १३. धर्मराज, १४. सोमाध्यायी, १५. सत्संग, १६. धनुष, १७. भाग्यभवन, १८. दान आदि- तथापि व्याकरण की दृष्टि से धर्म शब्द का अर्थ तो धारण करना ही होता है। निरुक्त में 'धर्म' शब्द का अर्थ 'नियम' बताया है। दोनों को दृष्टिगत करते हुए धर्म शब्द का यही अर्थ प्रतीत होता है कि जिस नियम ने समस्त विश्व को धारण कर रक्खा है, और किन नियमों के अनुसार चलने से सुख-शान्ति-सन्तोष आदि का लाभ होता है। 'धनाद्धर्मं ततः सुखम्' की उक्ति तो सर्वत्र प्रसिद्ध ही है। ऐहलौकिक और पारलौकिक भेद से सुख भी दो प्रकार का है। अतः कहना होगा कि जिससे दोनों प्रकार के सुखों की प्राप्ति हो सके वही 'धर्म' है। सभी लोग सुख की प्राप्ति के लिये ही प्रयत्नशील रहते हैं। **अतएव वैशेषिक दर्शन के रचयिता महर्षि कणाद ने धर्म का यह लक्षण किया 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' जिससे इह लोक में उन्नति और परलोक में कल्याण या मोक्ष की प्राप्ति हो वह धर्म है।** श्रीमद्भागवत में भी- **'वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः'**- (६.१.४४) वेद ने जिसका विधान किया हो वह धर्म और उसके विपरीत अधर्म है। मीमांसासूत्रकार महर्षि जैमिनि, धर्म का लक्षण कहते हैं- **'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः'**- वेद के विधानानुसार अनुष्ठेय कर्म ही 'धर्म' है। **सम्राट् मनु अपने संविधान अर्थात् मनुस्मृति में धर्म का लक्षण बताते हैं-**

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्।। (२.१२)

वेद, स्मृति, सदाचार, और अपनी आत्मा की प्रसन्नता- ये चारों, धर्म के परिचायक हैं। 'श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं यत् स धर्मः प्रकीर्तितः'- वेद तथा धर्मशास्त्र में जो बताया गया है उसे धर्म कहते हैं।

'श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्।।' (२.९)

'श्रुति और स्मृति के द्वारा प्रतिपादित धर्म का अनुष्ठान करने वाला मनुष्य इस लोक में यश को पाता है और मृत्यु के पश्चात् परलोक में उत्तम सुख को पाता है।

'आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः।।' (२.१०८)

श्रुति एवं स्मृतिप्रतिपादित सदाचार, श्रेष्ठ धर्म है, अतः आत्मज्ञानी द्विज सदैव सदाचार से युक्त रहें। भगवती श्रुति ने धर्म के तीन स्कन्ध बताये हैं- 'त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचर्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन् सर्वं एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति। (छा.उ. २.२३.१) धर्म के तीन आधार-स्तम्भ हैं- यज्ञ, अध्ययन और दान- यह प्रथम स्कन्ध है। तप ही- दूसरा स्कन्ध है। आचार्य कुल में रहनेवाला ब्रह्मचारी जो आचार्य कुल में अपने शरीर को अत्यन्त क्षीण कर लेता है- यह तीसरा स्कन्ध है। ये सभी पुण्य लोक के भागी होते हैं और संन्यासी अमृतत्व को प्राप्त करता है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय हिन्दू जनता अपने धर्म को सदा से श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त मानती चली आ रही है।

इसी 'धर्म' शब्द के पूर्व 'स्व' जोड़ने से **'स्वधर्म'** शब्द बनता है, जिसका अर्थ 'अपना वर्णाश्रम धर्म' होता है। उसी के पूर्व 'पर' जोड़ने से **'परधर्म'** शब्द बनता है, जिसका अर्थ अपने वर्णाश्रम धर्म को छोड़कर दूसरे का

धर्म है। उसी के पहले 'वि' उपसर्ग लगाने से **'विधर्म'** शब्द बनता है, जिसका अर्थ विगतः धर्माद् विधर्मः जो अपने धर्म से गिर जाय, अर्थात् धर्मान्तर का परिग्रह कर लेना। श्रुति, स्मृति, पुराणों में कहे हुए धर्मों के अतिरिक्त सभी धर्म, विधर्म हैं। इसलिए अपने धर्म को छोड़कर अन्य धर्म को स्वीकार करने वाले को विधर्मी कहा जाता है। उसी के पूर्व 'कु' उपसर्ग लगाने से 'कुधर्म' शब्द बनता है, जिसका अर्थ जिस धर्म की निन्दा की जाती है वह कुधर्म है। अर्थात् बुरे आचरण या पापाचरण को कुधर्म कहते हैं। 'कुधर्म' शब्द का एक अन्य अर्थ भी है, तथाहिः-

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्म तत्।
अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमः।।

जो धर्म, दूसरे धर्म में बाधा पहुँचावे, वह धर्म ही नहीं है, किन्तु कुधर्म है; जो धर्म समस्त धर्मों का अविरोधी है वही यथार्थ धर्म है। धर्म के पहले 'नञ्', जोड़ने पर 'न धर्मः अधर्मः' **अधर्म** शब्द बनता है, जिसका अर्थ है- जो धर्म से अत्यन्त विपरीत हो वह अधर्म है। **इस अधर्म के पाँच भेद हैं- १. विधर्म, २. परधर्म, ३. धर्माभास, ४. उपधर्म और ५. छल धर्म। दम्भ (ढोंग) को उपधर्म कहते हैं।** अपने ही मन से किसी काम को धर्म समझ लेना और तदनुसार आचरण करना **'धर्माभास'** है। परम्पराप्राप्त अर्थ को छोड़कर कुतर्क के सहारे अन्य अर्थ कर धर्म की व्याख्या करना **'छल धर्म'** कहलाता है। अतः इन छहों प्रकार के अधर्मों का परित्याग करना ही धर्म है। अपना स्वधर्म ही शान्ति, सुख, सन्तोष को देता है। इसी बात को भगवान् कहते हैं-

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' स्वधर्म में मर जाना लाभप्रद है, किन्तु परधर्म का परिग्रह करना उचित नहीं क्योंकि वह भयप्रद है। इसी धर्म को लक्ष्य करके कहा गया है-

धर्मेण हन्यते व्याधिः धर्मेण हन्यते ग्रहः।
धर्मेण हन्यते शत्रुर्यतो धर्मस्ततो जयः।।

धर्म से रोग नष्ट होते हैं, धर्म से ग्रहों की पीड़ा नष्ट होती है, धर्म से शत्रुओं का विनाश होता है, और जहाँ धर्म होता है वहाँ विजय होती है।

अब उस धर्मस्वरूप नियमसूत्र पर भी थोड़ा सा विचार कर लिया जाय, जिसका संकेत पहले किया गया है। यह सृष्टि त्रिगुणात्मिका है अर्थात् सृष्टि के तीन गुण हैं, जिन्हें सत्व, रज और तम कहते हैं। सृष्टि की सभी वस्तुओं में ये तीनों गुण उपलब्ध होते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति रजोगुण से होती है, सत्वगुण से उसकी स्थिति और तमोगुण से उसका संहार (प्रलय) होता है। यह समस्त विश्व, इन तीन अवस्थाओं के वशीभूत है। इसी प्रकार यह जीव भी जन्म लेता है, बढता है और मरता है। इसी अवस्था भेद से जीव की सृष्टि स्थिति और मुक्ति समझी जा सकती है। जैसे अहंकार से मोहित होकर जीव, कर्मप्रवाह में बहा अर्थात् उसकी उत्पत्ति हुई, पुनः वह कुछ समय तक इस सृष्टि के साथ बहता रहा अर्थात् कुछ समय तक उसकी स्थिति बनी रही और अन्त में अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात् ब्रह्म को पहचान लेता है तो वह इस मायाप्रवाह से विरत हो जाता है अर्थात् उसका मोक्ष (ब्रह्मरूप) हो जाता है। यही तीन अवस्थाएँ प्रत्येक जीव की होती हैं। अतः धर्म वही है, जो इस सृष्टि क्रिया के स्वाभाविक नियम में बाधा न पहुचाता हो और अधर्म वह है जो इस नियम में बाधा पहुँचावे। तात्पर्य यह है कि जीव सृष्टिप्रवाह में पड़ने के अनन्तर क्रमशः अपने गुणभेद के कारण उन्नत होता हुआ मुक्त होता है। इस क्रमोन्नति में जो कर्म सहायक हो, वह धर्म है, और इस क्रमोन्नति में जो कर्म बाधक हो वह अधर्म है। इसीलिये भारतीय वर्णाश्रमधर्मियों के यहाँ खाना, पीना, सोना, जागना, उठना, बैठना, कहना, सुनना, पहनना, जाना, आना आदि प्रत्येक कर्म के साथ धर्माधर्म का दृढ सम्बन्ध माना गया है। जिस कर्म से सत्त्वगुण की हानि और रजोगुण की निवृत्ति हो और सत्त्वगुण की वृद्धि हो वही धर्म है और जिस कर्म से सत्त्वगुण की हानि और रजोगुण, तमोगुण की वृद्धि हो वह अधर्म है। भगवान् स्वयं धर्मरूप हैं। वे स्वयं कहते हैं धर्मोहं वृषरूपधृक्, (भा. ११.१७.११) तप, शौच, दया और सत्य नाम के चार पैरों वाले वृषभ का रूप धारण करने वाला

धर्म मैं (भगवान्) स्वयं हूँ।' विष्णुसहस्रनाम में भी 'धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी, धर्म की रक्षा करने वाले, धर्म को बनाने वाले और समस्त धर्मों के आधार स्वयं भगवान् हैं। इसीलिये कहा गया है 'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः' धर्म का त्याग करने पर वह उस व्यक्ति का नाश कर देता है और पालन किया हुआ धर्म उस व्यक्ति की रक्षा करता है। 'आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः' धर्म आचार से उत्पन्न होता है और उस धर्म के अच्युत-भगवान् स्वयं रक्षक हैं। इसीलिये धर्म सदैव पालन करने योग्य है, वह उपहास की वस्तु नहीं है।

एक समय था जब कि धर्मजिज्ञासु लोग धर्म का ज्ञान वेदों से ही प्राप्त कर लिया करते थे। उस युग में चारों वेदों का अध्ययन-अध्यापन होता था। लोगों के आहार-विहार संयत थे जिससे पवित्र एवं स्वतंत्र विचार शक्ति सम्पन्न प्रतिभा दमकती चमकती रहती थी। धर्मानुष्ठान के समय जब कभी कोई समस्या उपस्थित होती थी तो तत्कालीन प्रतिभासम्पन्न ऋषिगण स्वयं ही अपनी प्रतिभा से ततत्तद्विषयों की मीमांसा कर समस्या को सुलझा लेते थे। इस बात का प्रमाण आज हमें जैमिनि के सूत्रों से उपलब्ध होता है। जैमिनिं ने अपने सूत्रों में तत्कालीन या पूर्ववर्ती स्वतन्त्रप्रज्ञ ऋषियों के नामों का निर्देश जहाँ तहाँ किया है। जैसे- १.१.५ में बादरायण ३.१.३ में बादरि, ३.२.४३ में ऐतिशायन, ६.१.२६ में आत्रेय, ६.७.३५ में कार्ष्णाजिनि, ६.७.३७ में लावुकायन, ११.१.५७ में कायुकायन आदि।

इनके अतिरिक्त भी कितने ही ऋषि होंगे जिनका निर्देश जैमिनि ने न भी किया हो। तात्पर्य यह है कि उस युग का वातावरण, दिनचर्या, आहार-विहार, आयुर्मर्यादा, प्रतिभा की प्रगल्भता, ज्ञान की गरिमा, तप की महिमा, शक्ति की विपुलता आदि सभी बातों की अनुकूलता होने से चारों वेदों के अध्ययनाध्यापन की परिपाटी चल रही थी, जिससे तत्कालीन विद्वानों को धर्म का ज्ञान, वेदों से प्राप्त कर लेना, कोई कठिन कार्य प्रतीत नहीं होता था।

काल के साथ ही जब युग बीतने लगा और भावी प्रजा में शक्ति की क्षीणता प्रतीत होने लगी, वातावरण परिवर्तित हुआ सा दृष्टिगोचर होने लगा

तब धर्मजिज्ञासुओं के अवलंबनार्थ धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्रों की सृष्टि हुई जिसके सहारे धर्मानुष्ठान में विस्मृतिवश किसी प्रकार से वैगुण्य न होने पाये। उपलब्ध गौतम, बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशि, वसिष्ठ, विष्णु, हारीत, शंख, लिखित, मानव, वैखानस, अत्रि, उशना, कण्व, कश्यप, गार्ग्य, च्यवन, जातूकर्ण्य, देवल, पैठीनसि, बुध, बृहस्पति, भरद्वाज, शातातप, सुमन्तु आदि महर्षियों के सूत्रों में गौतम-धर्मसूत्र अत्यन्त प्राचीन माना जाता है। ये धर्मसूत्र गद्यमय या गद्यपद्यमिश्रित हैं।

पुनः कुछ समय व्यतीत होने पर वातावरण में बढ़ता हुआ परिवर्तन दिखाई दिया, साथ ही साथ भावी प्रजा में तपः शक्ति, विद्याशक्ति, शारीरिक शक्ति का ह्रास होता दीखने लगा तब तत्कालीन ऋषियों ने स्मृतियों की रचना करना आरम्भ किया। धर्मसूत्रों और स्मृतियों में अन्तर यह है कि धर्मसूत्रों की विषयवस्तु व्यवस्थितरूप से नहीं है जबकि स्मृतियों में ऐसी अव्यवस्था नहीं पाई जाती। स्मृतियों का विषय प्रायः आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्त इन तीन प्रमुख शीर्षकों में होता है। स्मृति एवं धर्मशास्त्र का अर्थ एक ही है- श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः (मनु. २.१०) मनु-बृहस्पति-दक्ष-गौतम-यम-अंगिरस-याज्ञवल्क्य-प्रचेतस्-शातातप-पराशर-संवर्त-उशना-शंख-लिखित-अत्रि-विष्णु-आपस्तंब-हारीत आदि ये मुख्य स्मृतिकार हैं। इसके अतिरिक्त उपस्मृतिकार भी हैं तथा अन्य स्मृतिकार भी हैं। (वी.मि. परिभा. प्र.पृ. १८)।



"विज्ञ पाठक जन कमलाकान्त त्रिपाठी की 'धर्मशुद्धि' में प्रतिपादित धर्म तथा पं. मदन मोहन मालवीय एवं म.म. सदाशिव मुसलगांवकर के निबन्ध में प्रतिपादित धर्म का तुलनात्मक अध्ययन कर स्वयं यह निर्णय करें कि हिन्दू समाज के लिए हितावह क्या है?"

सम्पादक

श्री सनातनधर्म रक्षापीठ के पवित्र उद्देश्य

- विश्व में सनातन धर्म का प्रचार प्रसार
- अन्य धर्मों से संवाद
- व्रत-पर्व-महोत्सव निर्णय
- यज्ञादि कर्म संपादन
- संस्कृत विद्यार्थियों को सहयोग
- सद्ग्रन्थ प्रकाशन
- कूपमण्डूकता निवारण
- विद्या केन्द्रों की स्थापना
- योग साधना शिविर संचालन
- भारतीय कलाओं का संरक्षण
- ज्योतिष एवं आयुर्वेद का प्रसार

सम्पूर्ण देश में ग्यारह सौ केन्द्रों के माध्यम से श्री सनातनधर्मरक्षा पीठ धार्मिक भ्रम का निवारण और धर्मसेवा का काम कर रही है।